समर्पण रीति

असित शाह.

१. उपक्रम

मानवजीवनका इतिहास देखें तो उसमें सदा एक दुविधा, एक तलाश नजर आती है ऐसा कौनसा जादुका बटन है जिसे दबाते ही मानव सत्कर्ममें प्रवृत्त हो जाय और दुष्कर्मसे निवृत्त हो जाय ? अनेक धर्म आये, हैं या गयें; अनेक राजकीय तंत्रव्यवस्था आई, हैं या ग. उन हरेकमें अनेक प्रयोग इस दिशामें हुवे, हो रहे हैं या हो चुके. कुल मिलाकर कोई एक मेजिक स्वीच कारगर हो ऐसा स्पष्ट नहीं प्रतीत होता. विविध क्षेत्रमें विविध स्वीचोंका इस्तेमाल किया जाता है. उनमेंसे किसी व्यक्ति या जनसमुदायके लिये कोई स्वीच कारगर पायी जाती है तो कोई नहीं. एक नजर डालें.

१) आनुवांशिकता (जेनेटिक्स) नदी या सागरकिनारेकी धरतीमें भीतर गडे अण्डोंको फोडकर बाहर आते मगर या कछुएके नवजात शिशुमें शिकारी पक्षी या पशुओंसे बचकर दौडकर नदी–समुद्रमें घुसकर तैरने लगनेकी सिफत होती है, अतः वे बिना सीखे उसमें प्रवृत्त हो जाते हैं. हम इन्सान भी ऐसी कोई आनुवांशिक सिफत और प्रवृत्तिवाले होते ही हैं.

२) प्रशिक्षण (ट्रेनिंग) व्यायाम, योगासन, कराटे, शस्त्रविद्या, पाककला, चिकित्सा आदिमें प्रशिक्षण प्राप्त करनेके कारण लोग आजीवन प्रवृत्त होते हैं. जंगली हाथीको प्रशिक्षण देकर लकडेकी हेरफेर आदि कार्योंमें प्रवृत्त कर दिया जाता है.

३) दान और दंड शासकगण प्रजाको, मालिकगण नौकरोंको तो माँ–बाप एवं शिक्षकगण विद्यार्थिओंको या तो डरा धमकाकर या फिर ललचा फुसलाकर निवृत्ति या प्रवृत्तिकी प्रेरणा देते पाये जाते हैं. डिस्काउन्ट या मुफ्तके लुभावने विज्ञापन लोगोंको खरीदनेके लिये प्रेरित करते हैं.

४) साम और भेद अच्छे विद्यार्थी या नौकरको समझाकर या फिर ''तू कहाँ इन बाकी लोगों जैसा है'' यों प्रशंसा करके माँ–बाप/शिक्षक या मालिक प्रवृत्त या निवृत्त करते हैं.

५) आवश्यकतापूर्ति रोटी–कपडा–मकान आदि आवश्यकताओंकी पूर्त्यर्थ हरेक नस्लके प्राणीमें नर और मादा तथा बच्चे भी आपसमें काम बाँटकर प्रवृत्त होते हैं.

साम्यवादने साम और भेदकी स्वीचका इस्तेमाल तो किया पर इस आवश्यकतापूर्तिके मोरचेपे विफल रहनेके कारण लुप्त ही हो गया. कुछ अरसे तक दंडका भय रहा और दमनकारी शासन चल पाया पर आखिरमें जाके लोगोंने बगावत करके तख्ता पलट ही दिया.

६) स्पर्धा ओपन मार्केट कोनोमीमें ग्लोबलाझेशनके कारण गलाकाट स्पर्धा होती है हरेक क्षेत्रमें. उसमें टिके रहनेके लिये हरेक उत्पादक पूरी ताकतसे दिनरात प्रवृत्त रहता है.

७) शपथ / दीक्षा लोकशाहीमें विधानसभ्य, सांसद, मंत्री, सेनाध्यक्ष, राष्ट्रप्रमुख, न्यायाधीश, पोलीस न्स्पेक्टर आदि हरेक पदके शपथ लिवाये जाते हैं. डोक्टर आदिको भी ऐसे शपथ लिवाये जाते हैं. शपथमें अपने पदकी गरिमाके अनुरूप वर्तन करनेका व्यक्ति संकल्प करता है. शपथ लेनेके बाद ऐसी अपेक्षा की जाती है कि वह उस शपथको पालें.

यद्यपि व्यवहारमें ऐसा पाया जाता है कि आदमी कितना सज्जन या दुर्जन है उसपे उसका वर्तन आधारित होता है. क्योंकि शपथ लेकर भी लोग पक्ष और निष्ठा बदलते रहते हैं.

अपने यहाँकी ब्रह्मसंबंधदीक्षा भी ऐसे शपथ है. पहलेके जमानेमें ब्रह्मसंबंध लेते ही हरि–गुरु–वैष्णव तीनों सक्रिय हो जाते थे गुरु सेवा पधराकर सिखानेमें, वैष्णव सेवा करनेमें और श्रीठाकुरजी सेवा लेकर सानुभाव जतानेमें. अब आजकल गुरु दीक्षा देकर भेट लेकर दूसरे गाँव श्रीठाकुरजीसमेत पधार जाते हैं और वैष्णव भेट धरके कंठी पहनकर घर आ जाता है. तीनों स्वीच–ऑफ ! खैर.

८) आराम या शौककी इतर प्रवृत्ति एकका एक काम करते बीचमें कंटाला आये तब विराम या शौककी इतर प्रवृत्ति करनेसे ताजगी आती है.

९) कुतूहल और एकविधता मैं पिछले ३५ वर्षसे साबुनके विज्ञापनमें उसे ''नया लक्स'' कहकर प्रसिध्ध किया जाता देख–सुन रहा हूँ ! इस एकविधतासे ऊबकर ऐसी निवृत्ति आई है कि कुतूहलके बचनेकी कोई उम्मीद नहीं !

खैर. ये तो हु लौकिक मेजिक स्वीचोंकी बात. अब शास्त्रीय मेजिक स्वीचोंकी बात.

१०) शास्त्रज्ञान वात्स्यायन ऋषि कहते हैं ''शास्त्राणां विषयस्तावद् यावद् मन्दरसाः नराः, रतिचक्रे प्रवृत्ते तु न च शास्त्रं न वै क्रमः''. यदि व्यक्ति मंदरस हो तो शास्त्रके ज्ञानसे उसे रस जग सकता है. एकबार यदि ऐसे रसाविष्ट हो गया तो शास्त्र या क्रमकी उसे गरज नहीं रह जाती. धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, भक्ति, नीति, शिल्प, नाट्य आदि अनेक क्षेत्रके विविध शास्त्र हैं. उस उस विषयके जिज्ञासु उन उन शास्त्रको जान लें तब रस जगनेपे काया–वाणी–मनसे उसमें उपदिष्ट आचरणमें प्रवृत्त होते पाये जाते हैं.

भारतीय दर्शनमें शास्त्रज्ञानसे कर्तव्यपरायण होनेके बारेमें दो प्रकारकी मान्यताएँ प्रचलित हैं. मीमांसक और शांकर ऐसी मान्यता रखते हैं कि शास्त्रवचन क्रिया या ज्ञानके लिये प्रेरित करनेके अपरोक्ष सामर्थ्यसे संपन्न हैं. शास्त्रवचनोंमें ऐसा अलौकिक आदेश निहित है कि

जिसके कारण उन्हें सुनते ही यज्ञयागादि कर्म या ब्रह्मज्ञानमें साधककी तत्काल प्रवृत्ति सिद्ध होती है. यह परंतु शास्त्रके प्रति श्रध्धातिशय है, एक तरहकी अतिभावनाशीलता है.

श्रीमहाप्रभुजीकी मान्यतानुसार, भगवान गीतामें कहते हैं यों, ''ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि'' शास्त्रसे कौनसा कर्म कृत्यर्ह अर्थात् करने लायक है और कौनसा नहीं उसका ज्ञान फक्त होता है. जाननेके बाद भी को प्रवृत्त हो और कोई न भी हो. कर्ता तो स्वतन्त्र है.

११) अंतर्यामि उपनिषद् और गीताके अनुसार परमात्मा हृदयमें स्थित है और वह ही जीवात्माओंको भले-बुरे काम करने प्रेरित करता है.

१२) कृपा और वरण उपनिषद् अनुसार जिस जीवात्माको प्रभु जिस तरह पसंद करते हैं उसपर वैसी कृपा करके उसे तद् तद् मार्गमें प्रवृत्त करते हैं.

१३) माहात्म्यज्ञान प्रभुके माहात्म्यका ज्ञान होनेपर देव-मुनि-मनुष्य या अन्य योनिके जीव भगवदभिमुख होते हैं.

१४) महापुरुषसंग निष्ठाशील सिध्धकक्षापन्न महानुभावोंका संग प्राप्त होनेपर आदमी रसाविष्ट होता है, गीले कपडेसे लिपटनेपर सुखा कपडा भी गीला हो जावे वैसे.

१५) केवल भाव विश्वभरके धर्मशास्त्रोंमें श्रीमद्भागवत महापुराण एकमात्र ऐसा है जो उद्घोष करता है ''कामं क्रोधं भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव वा, नित्यं हरौ विदधतौ यान्ति तन्मयतां हि ते''. लोकमें सामान्यतः निंद्य माने जाते कामक्रोधादिसे लेकर स्नेहादि उदात्त भावोंमेंका को भी एक मनोभाव प्रभुके प्रति उत्कटतासे रखनेवाले भगवन्मय होकर मुक्त हो जाय ऐसा भगवानमें सामर्थ्य है. केवल इस सूत्रको देकरके रुक जानेके बजाय हरेक मनोभावके दृष्टान्त भी दिये हैं ''गोप्यः कामाद्, भयात् कंसः, द्वेषाद् चैद्याद्यधीरधीः, सम्बन्धाद् वृष्णयः, स्नेहाद् यूयं, भक्त्या वयं विभो''. यह किन्तु खास करके श्रीकृष्णलीलामें प्रकटित एक अवतारकालीन शास्त्रार्थ है; अनवतारकालमें वैसा दृष्टान्त मुश्किलसे मिल पाता है.

इन विविध मेजिक स्वीचमेंसे अपने संप्रदायमें जीवकी ओरसे माहात्म्यज्ञान और स्नेहकी स्वीच पर जोर दिया गया है. माहात्म्यज्ञान और स्नेहमयी भक्ति वृध्धिंगत हो एतदर्थ दैनिक आचरणीय समर्पणरीतिका कार्यक्रम उपदिष्ट है. आगे इस विषयमें और विचार करेंगें.

आज संप्रदाय एक निर्णयात्मक दौरसे गुजर रहा है. समर्पणरीति पर बाहरके और अंदरके लोग आक्षेपोंकी बौछार करके उसे संप्रदायकी आजकी अवदशाके लिये जिम्मेदार घोषित करते हैं. को कहता है कि समर्पणरीति अेन.आर.आ.को अपीलिंग नहीं लगती तो को कहता हैं कि युवाओंको. को उसे व्यावसायिक संपर्क बढानेमें बाधारूप पाता है तो को सामाजिक संबंध बढानेमें तो को संगठन या संस्थाके विकासमें. किसीको उसमें समयका व्यय लगता है तो किसीको धनका तो किसीको शक्तिका.

अब दखलअंदाजी करती है इसलिये को उसे दस मिनिटमें निपटा सकें उतनी अल्प रखनेका सुझाव देता है तो को फक्त वीक एन्डमें की जा सके वैसी एडजस्टेबल. कतिपय रेडीमेड धर्मके रिटेल और होलसेल विक्रेता अपने हिसाब और दूसरेके खतरेपे आठ समयके दर्शनकी वीसीडी देख लेने या फिर सार्वजनिक मंदिरकी व्यावसायिक सेवामें सम्मिलित होनेके विकल्प देते हैं तो को लामाओंके चक्करमें फँसे उपदेशक मेडिटेशनका लोकप्रिय विकल्प अपनाने पर तुले हुवे हैं.

किसे क्या अपीलिंग लगता है और क्या नहीं यह तो उसका जीवनसाथी जाने या उसका अंतर्यामि. मेरे हिसाबसे तो ऐसे अविचारित विकल्पोंको अपनानेसे पहले शांतचित्तसे यह सोचना चाहिये कि पूर्वाचार्यों द्वारा सुविचारित और साक्षात् भगवदाज्ञासे प्रवर्तित समर्पणरीतिकी भक्तिमें उपयोगिता क्या है ? ''बुवाको मूछ ऊगे तो चाचा कही जाय'' ऐसी गुजराती कहावत अनुसार इन विकल्पोंकी भक्तिकी वृद्धिमें समर्पणरीति जितनी उपयोगिता हो तो ही वे ग्राह्य बन पायेंगें.

मैंने आगे जाकर ये सिध्ध किया है कि आधुनिक और भारतीय संदर्भमें भी समर्पणरीति कितनी उचित है. फिर भी संप्रदायके को तथाकथित अनुयायी/विद्वान/आचार्य बन बैठे हों उनको समर्पणरीति न ही अनुसरनी हो तो मेरी उन्हें बिनती है कि संप्रदाय छोडकर चले जायें. क्योंकि सिन्सियर डिसओबॅडियन्स इझ बेटर धेन इनसिन्सियर ओबॅडियन्स; प्रामाणिक अपालन यह अप्रामाणिक पालनसे बेहतर है.

२. आधुनिक संदर्भ

न्यूरोसायन्स, एम.आ.थीयरी, इमोशनल इन्टेलिजन्स

१. न्यूरोसायन्स या मस्तिष्कविज्ञानका पिछले ५० वर्षोंमें उल्लेखनीय विकास हुवा है. विविध कार्यपध्धतिओंसे अब दिमागका अभ्यास किया जाता है. मृत व्यक्ति और बंदर-हाथी आदिके दिमागकी बायोप्सी (विच्छेदन) करके उनकी तुलना करनी या उनका रासायणिक विश्लेषण करने मात्रसे बात आज आगे निकल गई है. एम.आर.आ. स्कॅन और पोझीट्रॉन एमिशन टोमॉग्राफी जैसी फंक्शनल न्यूरोइमेजिंग पद्धतियाँ द्वारा दिमाग काम कर रहा हो उसी वक्त उसकी गतिविधियाँ देखी जा सकती है. इसके अलावा दुर्घटनामें दिमागके कौनसे हिस्सेपे चोट लगी है और उसके कारण दृष्टि या श्रवण आदि कौनसे कार्यमें रुकावट आ रही है उसका अभ्यास किया जाता है. वैसे ही ब्रेन ट्यूमर (दिमागमें गांठ) का अभ्यास किया जाता है. तदुपरांत दिमागके न्यूरल नेटवर्कका कम्प्युटरके नेटवर्कके मोडेलसे तुलना करके अभ्यास किया जाता है.

२. इन हरेक पद्धतिकी अपनी मर्यादा हैं. और फिर दिमाग भी ऐसा अद्भूत है कि वह आसानीसे समझा नहीं जा सकता; प्राचीन भारतीय-ग्रीक-जिप्तके चिंतकोंने भी दिमागके पीछे भारी दिमाग लगा दिया था.

एक दृष्टान्त लें तो दिमागकी गतिकी तुलना कम्प्युटरकी गतिसे की जाती है. आंखके पर्दे पर झेली जाती आकृतिओंको पहचाननेमें

दिमाग १०० ट्रीलियन इन्स्ट्रक्शन पर सेकन्ड (टेराफ्लॉप्स) की गतिसे काम करता है. इतने तेज कम्प्युटर शायद २०३०की सालमें ही बन पायेंगें. यद्यपि दिमागकी न्यूरल सर्किट डीजिटल नहीं होती अतः बायनरी कोड ०–१से संचालित नहीं होती, इस लिये उसकी कार्यपद्धति अज्ञात ही है अब तक. जब ज्ञात होगी तब शायद कम्प्युटर बनानेकी तकनीकमें भी क्रांति आ जायेगी.

३. अब तकके अभ्यासोंके निष्कर्ष निम्नलिखित हैं:

(क) मस्तिष्क ज्ञानतंत्र पर नियंत्रण रखता है. हृदयका धडकना, श्वासोच्छ्वास, पाचन आदि स्वयंसंचालित क्रियाओं पर उसका नियंत्रण होता है. इसके अलावा उच्च कक्षाकी विचार करना, कल्पना करनी, याद रखना आदि क्रियाएँ भी उसके ही नियंत्रणमें होती है.

(ख) मानवका दिमाग अन्य प्राणिओंके दिमाग जैसी ही कार्यपद्धति अपनाता है. फर्क सिर्फ इतना है कि शरीरके कदकी तुलनामें दिमागका कद मानवमें बडा है. वह थोडा ज्यादा अटपटा और ज्यादा घने संपर्कसूत्रोंवाला होता है.

(ग) बालकका दिमाग शरीरकी ६० प्रतिशत तो वयस्कका दिमाग २० प्रतिशत ऊर्जाका व्यय करता है. इस बजहसे पैदा होती उष्मा दूर न की जाय तो दिमागको कायमी नुकसान हो सकता है. अतः दिमागमें थर्मोस्टेट जैसी गरमीके नियंत्रणकी व्यवस्था भी होती है.

(घ) पुरुषोंका दिमाग १ से डेढ किलोका और स्त्रिओंके दिमागकी तुलनामें १०० ग्राम जितना भारी होता है. यद्यपि शरीरके वजनकी तुलनामें दिमागका वजन दोनोंमें समान पाया जाता है.

(च) दिमाग बहोत मृदु, जेली जैसा गहरे लाल रंगका होता है. वह वाम और दक्षिण ऐसे दो गोलार्धमें बँटा होता है. प्रायः सभी क्रियाओंके नियंत्रणकी क्षमता दोनों गोलार्धोंमें बँटी होती है. कतिपय वाणी आदि क्रियाओंका नियंत्रण एक गोलार्धके को हिस्से द्वारा होता है. फिर भी दिमागमें ऐसा अद्‌भुत सामर्थ्य है कि छोटी आयुमें उन उन हिस्सेपे चोट लगी हो तो वह क्षमता अपने आप दूसरे गोलार्धमें अंशतः या पूर्णतः प्रकट हो जाती है !

(छ) किसी एक पलमें दिमागका १० प्रतिशत हिस्सा ही कार्यरत होता है. यदि १०० प्रतिशत दिमाग कार्यरत हो जाये तो तत्काल वह काम करना बंद कर दे ! १० प्रतिशत कार्यरतता ऊर्जा और गरमीका संतुलन बनाये रखती है. मूर्ख व्यक्तिका दिमाग जो काम करनेके लिये जितना सक्रिय होता है वही काम बुध्धिमान व्यक्तिका दिमाग कम सक्रिय होकर कर सकता है.

(ज) जवानी, बल, सौन्दर्य, कामवासनाकी भांति बुध्धिमत्ता बढानेका पागलपन इन्सानोंपे आदिकालसे सवार है. और फिर ''लोभीजनोंके गाँवमें धूर्त ठग भूखे नहीं मरते'' न्यायसे सदीयोंसे बुद्धिमत्ता बढानेकी औषधियाँ बिकती रही है. इसके अलावा संमोहन, शक्तिपात, सर्जरी आदि प्रक्रिया भी की जाती है. परन्तु को उपाय बहोत कारगर नहीं पाया गया. दिमागकी ज्ञानकी क्षमता नियमित पढाई, चर्चा, विचार आदिसे बढ सकती है, पर सब क्षमताओंका योग प्रायः बिना घटबढ स्थिर रहता है.

(ट) एक चौंका देनेवाला निष्कर्ष ऐसा है कि हृदय संवेदनहीन होता है; संवेदनाका अनुभव करनेवाले केन्द्र दिमागमें ही स्थित हैं. यद्यपि नास्तिकसे लेकर आस्तिक दर्शन–धर्म और साहित्यकारोंसे लेकर आम आदमी हृदयको संवेदनाका मुख्य स्थान मानते हैं. हमें अधिक संशोधनकी राह देखनी चाहिये.

४. न्यूरोसायन्सके आधारपे हार्वर्ड युनिवर्सिटीके प्रोफेसर डो.हावर्ड गार्डनरने सन १९८३में मल्टीपल इन्टेलिजन्स थीयरी प्रस्तुत की. वे मानते हैं कि प्रचलित आ.क्यू. = बुध्धिमत्ता सूचकांकका परीक्षण व्यक्तिकी बहोत सीमित क्षमताको उजागर कर पाता है. शिक्षण और सामाजिक क्षेत्रमें भाषा और तर्क/गणित संबंधी क्षमताको ही बुध्धिमत्ता मानकर अन्य क्षमताओंको कौशल्य / प्रावीण्य / निपुणतामें गिना दी जाती थी. डो. गार्डनरने उन क्षमताओंको भी बुध्धिमत्ताके आसन पर बैठाया. उनके हिसाबसे बुध्धिमत्ताके आठ प्रकार हैं

(क) भाषासंबंधी बुध्धिमत्ता (लिन्विस्टिक इन्टेलिजन्स) साहित्यकार, कवि, वक्ता, नेता, सांसद, विधायक, अभिनेता इस किस्मकी बुध्धिमत्तासे संपन्न होते हैं. उनका भाषा बोलने और/या लिखने पर वर्चस्व होता है.

(ख) तर्क या गणितसंबंधी बुध्धिमत्ता (लोजिकल इन्टेलिजन्स) वकील, डिटेक्टिव, गणितशास्त्री, वैज्ञानिक, डोक्टर आदि उलझनोंको सुलझानेके लिये विविध चरणोंमें विचार कर पानेकी क्षमतासे संपन्न होते हैं.

(ग) स्थान या आकृति संबंधी बुध्धिमत्ता (स्पॅटियल इन्टेलिजन्स) चित्रकार, शिल्पकार, आर्किटेक्ट आदि मानसिक चित्रोंको मूर्तरूप दे पानेकी बुध्धिमत्तासे संपन्न होते हैं.

(घ) शारीरिक बुध्धिमत्ता (बॉडीली इन्टेलिजन्स) स्वयं काम करनेवाली गृहिणी, सैनिक, कमान्डो, पर्वतारोहक, नाविक, खिलाडी, नृत्यकार, अभिनेता, मेडिकल सर्ज्यन, मजदूर आदि शरीरके अंगोंसे फूर्तिसे काम लेनेकी बुध्धिमत्ता रखते होते हैं.

(च) संगीतसंबंधी बुध्धिमत्ता (म्यूझिकल इन्टेलिजन्स) कतिपय पंछी, संगीतकार और गायक जटिल रागों या बंदिशोंको ग्रहण और प्रस्तुत करनेकी बुध्धिमत्तावाले होते हैं.

(छ) प्राकृतिक बुध्धिमत्ता (नेचरल इन्टेलिजन्स) किसान, वनवासी मानव–पशु–पक्षी, रसोया या रसोयानी, पर्यटक, आयुर्वेद–नेचरोपथीके वैद आदि फल–फूल–वनस्पति औषधि–जडीबुटी सब्जी या जमीन–पूर–धरतीकंप ग्रहण–वरसाद–दुष्कालादि प्राकृतिक पदार्थ / हादसोंके प्रति औरोंसे अधिक जानकारीवाले होते हैं.

(ज) सामाजिक बुध्धिमत्ता (इन्टरपर्सनल इन्टेलिजन्स) सेल्समेन–मेनेजर, नेता आदि लोकप्रिय होनेके लिये आवश्यक ऐसी दूसरे व्यक्तिकी अपेक्षाएँ समझनेकी तथा संपर्क बनाने–निभाने–बढानेकी बुध्धिमत्तासे संपन्न होते हैं.

(झ) वैयक्तिक बुध्धिमत्ता (इन्ट्रापर्सनल इन्टेलिजन्स) मानसिक वयस्कतासे संपन्न बुझुर्ग, चिंतक, दार्शनिक, काउन्सेलर आदि अपने मनोभाव–विचार–वृत्तिओंको नियंत्रणमें रख पाते हैं और अन्य समस्यापीडितोंको इस बारेमें मार्गदर्शन देते हैं.

५. इस एम.आ.थीयरीके कारण विद्यालयोंकी शैक्षणिक पद्धतिमें आमूल परिवर्तन आ गया है, खास करके अमेरिकामें. कौनसा

विद्यार्थी कौनसी बुध्धिमत्तासे संपन्न है ये जानकर उसके अनुरूप पद्धतिसे बात उसे समझानेका अभ्यासक्रम अपनाया जाता है. कितने ही विद्यार्थी, नौकरी करनेवाले और व्यावसायिक खुदमें छिपी बुध्धिमत्ताको पहचानकर उसके अनुरूप क्षेत्रमें प्रवृत्त हो जाते हैं. (अपने यहाँकी प्राचीन गुरुकुल पद्धतिमें भी इन सब प्रकारकी बुध्धिमत्ताका समावेश किया जाता था, जैसे कि क्षत्रिय शस्त्रविद्या भी सीखते थे. अधिक जिज्ञासा हो तो श्रीभागवतके दशमस्कन्धके राजसप्रकरणमें भगवान गुरु सांदीपनिसे चौसठ विद्या सीखे उसके श्रीसुबोधिनीजी देखनेलायक है.)

६. डो. गार्डनरना मानते हैं कि यह क्षेत्र अब भी विचारार्थ खुला है. बुध्धिमत्ताके प्रकार आठसे अधिक हो सकते हैं. अथवा दूसरे शब्दोंमें उनकी सरहदें फैलाई या सिकुडी जा सकती है. सन २००३में इस थीयरीको २० वर्ष पूर्ण होनेके अवसरपे लिखे लेखमें उन्होंने अधिक संशोधन आवश्यक होनेका और खुदके भी एतदर्थ सक्रिय होनेका निवेदन किया है. (अपने यहाँके बुध्धिजीवीओंको यह पचीस वर्ष पुरानी थीयरी पता भी होगी क्या ?)

७. सन १९९५में डो. डेनियल गोलमानने ''मोशनल इन्टेलिजन्स'' किताब लिखकर एक वैश्विक आंदोलनका आरंभ किया. इस किताबकी ३० भाषामें ५० लाख प्रतियाँ बिक चुकी हैं. आज अमेरिकन एक्सप्रेस, एवॉन, शेल, युनिलीवर, नेसलॅ, फाझर, लोकहीड, हील्टन, बोंग, मोटोरॉला, जोन्सन एन्ड जोन्सन जैसी महाकाय कंपनी अपने कर्मचारीओंको इमोशनल इन्टेलिजन्सका प्रशिक्षण देकर संचालन सुधारकर अधिक मुनाफा बटोरती हैं. खास करके नेतृत्वका विकास, विक्रीमें वृद्धि और नौकरी छोडकर चले जाते कर्मचारीओंकी संख्यामें कटौती इन तीनोंमें इससे काफी बदलाव पाया जाता है. इसमें पारंपरिक आ.क्यू. काम नहीं आती. कर्मचारीगण इमोशनल इन्टेलिजन्स बढनेके कारण कंपनीके कामसंबंधी एवं निजी जीवनसंबंधी सुयोग्य निर्णय ले पाते हैं. मेनेजर अपने सहकर्मीओंको प्रोत्साहित, आत्मविश्वाससभर और संकल्पबद्ध करके तथा उनकी देखभाल करके अच्छे परिणाम प्राप्त करते हैं. निजी जिन्दगीमें कर्मचारी खुश और स्वस्थ रहते हैं, सन्तुष्ट रहते हैं. यह सिक्केका एक पहलू है.

८. सिक्केका दूसरा पहलू यह है. डो. गोलमान मानते हैं कि इस आंदोलनके कारण विश्वभरके लोगोंमें सहानुभूतिका विकास होगा और गरीबी, भूखमरा, रोगोंका फैलना, दुर्घटना/आपदा, युद्ध आदिका वैश्विक स्तरपे मुकाबला हो पायेगा. लोग अपने वैयक्तिक लाभ और हितोंसे ऊपर उठकर भी विचार और आचरण कर पाने सक्षम बनेंगें. गत सातेक वर्षमें घटित कुछ घटनाओंने विश्वभरमां तहलका मचा दिया है

(क) ९/११ वर्ल्ड ट्रेड सेन्टरके आतंकवादी हुमलाखोर पालटोंको अमेरिकामें १००० घंटेसे अधिक समय विमानचालनकी तालीम दी गई थी. इस दौरान महाकाय विमानोंका नियंत्रण तो उन्हें आ गया पर अपने मनका नियंत्रण करनेके बारेमें उन्हें एक घंटा भी तालीम नहीं दी गई थी. नतीजा यह आया कि बदला लेनेकी भावना सिरपर सवार हो ग और मौतका डर भी उन्हें न रोक सका. ऐसे सुसाड बोम्बिंगके हादसे अब को न बात नहीं रहे.

(ख) राककी अबु गरीब एवं अन्य जेलोंमें अमेरिकन सैनिकोंने दोषी/निर्दोष कैदियोंपर सृष्टिविरुद्धके कृत्य समेत अमानुषी अत्याचार किये उसकी वीडियॉ क्लिपिंग्स जगतभरमें दिखाई ग. उसमें मेजर स्तरके फौजी अधिकारी भी सामिल थे. ब्रिटिशरोंको ऐसा गर्व था कि हमारा शिस्तबद्ध सैन्य इन अमेरिकनों जैसा असंस्कृत नहीं है, पर उनकी महिला सार्जन्ट दूसरी जेलमें एसे ही कुकृत्य करती पाई गई ! ऐसा वर्ताव जीनिवा कन्वेन्शनकी युद्धकैदीसंबंधी मार्गदर्शक आचारसंहिताका सरेआम भंग है. इन हरेक फौजी पदाधिकारीको भी १०,००० घंटे जितना प्रशिक्षण दिया गया था; पर उसमें शस्त्र चलाना ही सीखाया होगा, मनको चलाना नहीं. आज भी राक समेत विश्वके अनेक देशोंमें दमनका दौर जारी ही है. सैनिक और आतंकवादीओंके बीच कभी तो सिर्फ गणवेशका ही फर्क रह जाता है.

(ग) वर्ष २००६की वर्ल्डकप फूटबोलकी फानल फ्रान्सके झीनेदीन झीदानके करियरकी अंतिम मेच थी, क्योंकि उस दौरका यह सर्वोत्तम खिलाडी स्पर्धा शुरु होनेके पूर्व ही अपनी निवृत्तिकी योजना घोषित कर चुका था. मेचके दौरान टालीके एक खिलाडीकी अभद्र टिप्पणी सुननेपर तैशमें आकर उसने उस खिलाडीकी छातीपे अपना सिर ठोककर उसे जमीन पर गिरा दिया. परिणामस्वरूप झीदानको रेडकार्ड दिखाकर मैदानसे बाहर निकाला गया और टाली कप जीत गया. फ्रान्सको वर्ल्डकप जीताकर यादगार निवृत्ति लेनेकी योजना क्षणिक तैशके कारण मिट्टीमें मिल गई और एक आजीवन न भूलाया जा सके ऐसा दुःस्वप्न बनकर रह ग वह फाईनल मैच झीदानके लिये. इसके अलावा क्रिकेटर, जिम्नॅस्ट, वेटलिफ्टर, मुक्केबाज, तैराक, टेनिसके खिलाडी आदि रमतवीर/वीरांगना मेचफिक्सिंग और ड्रग्स लेनेके चक्करमें अक्सर कसूरवार पाये जाते हैं. इसमें जीतने या कमानेका तनाव खेलदिलीकी जगह ले लेता पाया जाता है. विद्यार्थीगण और अन्योंकी आत्महत्यामें वृद्धि भी एक चिंताजनक बात है. (इसी लिये हाल ही में वर्ल्ड हेल्थ ओर्गेनाझेशनके मार्गदर्शन अनुसार भारतीय माध्यमिक शिक्षणके अभ्यासक्रममें ''लाफ स्कील्स एज्युकेशन'' नामक तनाव और तैश पर काबू पानेकी क्षमता विकसित करनेका अभ्यास समाविष्ट किया गया है.)

९. आखिर क्या है यह मोशनल इन्टेलिजन्स ? एम.आ.थीयरीके अनुसार तो वह सामाजिक और वैयक्तिक बुद्धिमत्ताका मिश्रण है. पर उसे अधिक गहराईसे समझना आवश्यक है. एतदर्थ प्रथम मोशन्सको समझने चाहिये. मोशनका मतलब है अभिव्यक्त होते मनोभाव. वह अभिव्यक्ति मुखमुद्रा, हृदयकी तेज धडकन, रुदन या चहेरेको हाथोंसे ढँक देना म ऐसी अनेक भांतिकी हो सकती है. यह मनोभाव हर्ष, क्रोध, भय, निराशा, आश्चर्य, सहानुभूति आदि हो सकते हैं. यह मनोभाव या मनकी अवस्थाएँ अपनेआप पलभरमें उभर आती है; तदर्थ सभान प्रयासकी जरुरत नहीं पडती. प्राणी भी अपने मनोभाव अभिव्यक्त करते ही हैं, जैसे कि वसंत आनेकी बधाई देने कुहूकती कोयल या वर्षाकी बधाई देने टहुकता मयूर.

१०. अपने यहाँ नाट्यशास्त्रमें मनोभावोंकी अभिव्यक्तिओंको अनुभाव कहे जाते हैं. हरेक मनोभावको कौनसी मुखमुद्रा या चेष्टा द्वारा

अभिव्यक्त करना यह बताया गया है उदा. लज्जा. पर फर्क सिर्फ इतना है कि नाटकोंमें अभिनेता सभान प्रयाससे उन उन अभिव्यक्ति करके मनोभाव जताते हैं. विविध संस्कृतिमें एक ही मनोभावकी अभिव्यक्ति भिन्न भिन्न होती है. फिर भी आपवादिक रूपसे को मनोभावकी अभिव्यक्ति विश्वभरमें समान भी होती है लज्जासे चहेरा गरम और लाल हो जाना, क्रोध और भयसे हृदयकी धडकनोंका बढ जाना, हर्षसे छातीमें हलकापन महेसूस होना, निराशा होनेपे गलेमें घुँटन होनी, कामना होनेपे गलेका सूखना.

११. वैज्ञानिक मानते हैं कि यह मनोभावोंकी अभिव्यक्ति उत्क्रांतिकी प्रक्रियामें प्राणीओंमें जीजीविषाके अंशतया प्रकट हु है. क्योंकि प्रथम दृष्टिसे विरोधी लगते मनोभाव और ज्ञान / विचार एकदूसरेसे घनिष्ठतासे संलग्न होते हैं. उदा. नाकसे को विशिष्ट सुगंध / दुर्गंधका ज्ञान होते ही प्राणी को मनोभाव अभिव्यक्त कर देता है और उसके करीब या उससे दूर जाने सक्रिय हो जाता है. यों हरेक निर्णय लेनेमें मनोभावका थोडा बहुत प्रभाव रहता ही है.

सैफ पालनपुरीका शेर है

हो फक्त बुद्धि तो दुनिया क्रूर है, निष्ठुर है,
और भाव हो तो सब कुछ प्रेमसे भरपूर है !

यद्यपि दुनिया क्रूर और निष्ठुर लगनी वह भी तो एक तरहका मनोभाव ही है न ! अभिव्यक्त होनेवाले मनोभाव भूतकालके खट्टेमीठे अनुभवोंकी यादरूप भी होते हैं और जन्मजात आनुवांशिक गुणधर्म भी हो सकते हैं.

१२. अभिव्यक्त मनोभाव सचमुचमें क्या हैं और कितने हैं इस बारेमें को सर्वसंमति नहीं है आधुनिक पाश्चात्य चिन्तकोंमें. को उनके प्राथमिक और माध्यमिक प्रायमरी और सेकन्डरी ऐसे भी प्रभेद करता है. को उन्हें दिमागमेंके न्यूरोकेमिकल्सके विविध संयोजन केवल मानते हैं तो को दिमागको विविध मनोभावरूप सुगंध–दुर्गंधोंका ठिकाना मानते हैं, जहाँ विविध गंधोपम मनोभाव अपनी अपनी तीव्रतावशात् अनुभवमें आते और लुप्त होते रहते हैं. (अपने यहाँ मनोभावोंका विचार नीरस विज्ञानके अंतर्गत न करके रसशास्त्र या नाट्यशास्त्रके अंतर्गत स्थायिभावस्थानीय ९ से ११ रस एवं उनके अनुरूप या विरोधी संचारीभाव तथा अनुभाव आदिके विस्तारतया किया गया है.)

१३. मनोभाव सभानप्रयासपूर्वकके नहीं होते अतः उनके साथ एक अनिश्चितता हर वक्त जुडी हुई होती है. उदा. को खचोखच मसाला भरी हुई हिन्दी फिल्म हीट होगी ही ऐसा को निश्चित तौरपे कह नहीं पाता. ब्याहके पचीस बरस साथ रहने पर भी स्त्री–पुरुष कभीकभाक साशंक होते हैं कि अपना एक काम या निर्णय या वेशभूषा उनके जीवनसाथीको भायेगी या नहीं.

१४. उत्कट मनोभाव आदमीको उकसाके अविचारित हिंसा–बलात्कारादि क्रिया करने मजबूर कर देता है. पहलेके अफघानी पठानोंके लिये कहा जाता था कि को शख्स पर गुस्सा आने पर पहले वो उसे मार देते और बादमें सोचते कि किस बातपे गुस्सा आया था; जो कँईबार मामूली हो ! इसे समझाते हुवे डो. गोलमान कहते हैं कि सामान्यतः इन्द्रियोंके संदेश थेलामस नामक दिमागका अंग कोर्टेक्सको भेजता है, कोर्टेक्स उसका विश्लेषण करके एमिग्डॅलाको मनोभाव और क्रिया प्रकट करनेका यथायोग्य आदेश देता है. पर आपातस्थितिमें थेलामस कोर्टेक्सको बाजुमें छोडकर सीधे ही एमिग्डॅलाको संदेश पहुँचाता है; जो उसके भूतकालके संगृहीत क्रियाकलापोंमेंसे किसी एकको प्रकट कर देता है. इसमें कभी जान बच जाती है तो कभी जा भी सकती है; जैसे कि ट्रेनके डिब्बोंमें आग लगते ही कुछ लोग चालु ट्रेनमेंसे कूद पडते हैं.

१५. ऐसे ''एमिग्डॅलाके अपहरण''को मोशनली सक्षम आदमी रोक सकता है. तीनसे छह सेकन्डके लिये तैशको काबूमें रख लिया तो अपने आप वह कम होने लगता है. यह है मोशनल इन्टेलिजन्स अर्थात् मनोभावसंबंधी बुध्धिमत्ता. तो अब मोशन्ससे पुनः मोशनल इन्टेलिजन्स पर आयें.

विगत तीस वर्षसे खास करके अमेरिकामें यह एक महत्त्वपूर्ण संशोधनका विषय बना हुवा है. आजकी तारीखमें कुल अंदाजन पांच लाख पन्ने भरके जानकारी विविध वेबसाटोंपे इस विषयमें उपलब्ध है ! (जिनमेंके सौएक पन्ने मैंने पढे हैं). इसमें एक नवतर विचारबीज यह है कि पहले जो माना जाता था कि भावनाएँ विचारप्रक्रिया और काम करनेमें अवरोध खडे करके एकाग्रतामें बाधा पहुँचाती है उसके बदले अब ऐसी मान्यता प्रचलित हुई हैं कि भावनाओंका हकारात्मक = पोझीटीव रोल है. वे काम करनेमें, विचार करनेमें या एकाग्र होनेमें नया जोश देती हैं. आइ.क्यू.की भांति मोशनल इन्टेलिजन्सका सूचकांक .आइ.क्यू. या इ.क्यू. प्रचलित हुवा है.

१६. मोशनल इन्टेलिजन्ससंबंधी अब तक हुवे संशोधनोंका सारांश इस प्रकार है

(क) पीटर सालोवी, जोन मेजर, डेविड कारुसो और डो. बारऑन मानते हैं कि मोशनल इन्टेलिजन्स तीन क्षमताओंकी जोड है मनोभावोंका अनुभव कर पानेकी क्षमता, मनोभावोंको समझ पानेकी क्षमता तथा विचार और काम करनेमें बल मिले वैसी परिणामलक्षी भावनाएँ पैदा कर पानेकी क्षमता. दूसरे शब्दोंमें अपने खुदके साथके और दूसरोंके साथके संबंधोंमेंसे प्रोत्साहक परिणाम जुटा पानेकी क्षमता. अथवा तो बाहरके संजोग और दबावोंके सामने सफलतापूर्वक टिके रहनेकी क्षमता. (इसे समझने ''बोर्डर'' फिल्ममें मेजरके किरदारमें सनी देओलको उसके संवाद और बोडी लेन्वेज बोलते सुनना–निहारना चाहिये.) यह एक बुध्धिमत्तासे विलक्षण क्षमता है. कम आइ.क्यू.वाले या अनपढ आदमी भी ज्यादा मोशनल इन्टेलिजन्सवाले हो सकते हैं. यद्यपि वह बुध्धिमत्ताकी विरोधी क्षमता नहीं है या दिमागपर हृदयके विजयकी द्योतक भी नहीं है. वह तो मनोभावोंके विकास और ज्ञानेतर बुध्धिमत्ताके विकासका संगम है. उसका संबंध मानवके दिमागके साथ ही है; क्योंकि मनोभावोंका अनुभव करनेके केन्द्र दिमागमें ही स्थित हैं.

(ख) यद्यपि ३०–७० प्रतिशत या ५०–५० प्रतिशत या ७०–३० प्रतिशत ऐसे विविध मत प्रवर्तित हैं, परंतु प्रायः हरेक मानसशास्त्री .क्यू.के विकासमें नेचर और नर्चर माने जिनेटिक और एनवायरमेन्ट अर्थात् बीजभाव और संजोग दोनोंको जिम्मेदार ठहराते हैं. उनमेंसे बीजभाव

अपरिवर्तनशील होने पर भी संजोगोंपर काबू पाकर कुछ हद तक .क्यू. बढाई जा सकती है यह बात निर्विवाद है.
(ग) डेनियल गोलमान कहते हैं कि मनोभावोंकी अनियंत्रित उफानें आनेसे विचारोंमें या काममें बाधा आती है. इस लिये मनोभावोंकी उफानोंसे जले बिना उनका लाभ ले पाना एक कडी चुनौती है. वर्ना तो हरेक मनोभावका एक विशिष्ट क्रिया करनेकी सज्जताके साथ सीधा संबंध होता है. जैसे कि प्रसन्नता शरीरमें नई कार्यशक्तिका संचार करती है. क्रोध हाथोंमें रक्तप्रवाह बढा देता है जिससे कि वह तुरत उठ जाय. भय बच्चोंको रोने या सोने प्रेरित करनेकी तो बडोंको भाग सके तदर्थ पैरकी ओर रक्तप्रवाह बढा देनेकी क्षमता रखता है. कामवासनाग्रस्त उत्तेजित व्यक्ति स्थिर नहीं बैठ पाता. यदि ऐसा संबंध न हो तो कभी जानसे हाथ धोनेकी बारी आ सकती है. बालक डरके मारे रोने न लगे तो आसपास या दूरवर्ती व्यस्त बडे उसकी ओर ध्यान न दें, तब पशु या आग या अनजाने आदमी जैसे भयके कारण उसे ग्रस लेते हैं. जिन बच्चोंमें ऐसी क्रियारूपी तात्कालिक प्रतिभाव देनेकी क्षमता नहीं होती वे अधिक आफतोंके शिकार बनते हैं और कभी तो उनके पालकोंको पता चले तब देर हो चुकी होती है.
(घ) मोरीस ऍलियास और स्टीवन टोबिआस मानते हैं कि अस्वस्थ कर देनेवाले मनोभाव ऐसा निर्देश करते हैं कि तुम्हें किसीके साथ कुछ समस्या है. जैसे कि बालकको स्कूल जाते वक्त ही पेट या सिरमें बेचैनी रोज होती हो या होमवर्क हाथमें लेते ही सुस्ती आने लगती हो तो उसकी बजह यह होगी कि स्कूल या होमवर्कमें उसे को तकलीफ है. अतः इस परिप्रेक्ष्यमें (१) मनोभावोंको समझकर (२) उनकी कारणभूत समस्याको पहचानकर (३) उसके विविध हलके परिणामोंका विचार करके (४) उनमेंका एक पसंद करके (५) उसका अमल करके (६) निर्धारित लक्ष्यकी ओर गति हो रही है या नहीं यह समयांतरसे जाँचते रहने पर समस्यामेंसे बाहर निकला जा सकता है.
(च) बॉमेस्टर मानते हैं कि मनोबल एक स्नायुकी भांति होता है; उसका इस्तेमाल करते रहनेसे वह मजबूत होता है. साँस रोकनी, एक पैर पर खडे रहना, एकबार भोजन न करना जैसी छोटी छोटी अपने बसमें हो ऐसी बातोंसे शुरुआत करके धीरे धीरे आगे बढा जा सकता है.
(छ) स्कीनर मानते हैं कि जीवनमें जिस आचरणको नवाजा जाता है वह आचरण दृढ होता है और .क्यू. बढाता है. एकांतमें पढते बालकके सामने एक खुली चोकलेट रख कर उसे कहा जाये कि यदि तू यह चोकलेट नहीं खायेगा तो तुझे दो चोकलेट मिलेंगें; तो धीरे धीरे दो चोकलेट पा पाके बालक खाना देखते ही उसपर तूट पडनेकी वृत्तिपर काबू पा लेता है.
१६ मीलका चक्कर काटनेके बाद अब समर्पणरीतिपे आयें !

१७. अब समर्पणरीतिमें इस सारांशके समांतर उपदेश उलटे क्रमसे देखते हैं.
(छ) ''आहारशुध्धौ सत्त्वशुध्धिः सत्त्वशुध्धौ ध्रुवा स्मृतिः'' ''त्वय्युपभुक्तस्रग्गन्ध–वासोऽलंकारार्चितम् उच्छिष्टभोजिनो दासाः तव मायां जयेमहि'' जैसे शास्त्रवचन एवं ''गंगात्वं सर्वदोषाणां गुणदोषादिवर्णना गंगात्वे न निरूप्या स्यात्'' आचार्यवचनों द्वारा समर्पणरीति सराही गई है. तो दूसरी ओर ''विषयाक्रान्तदेहानां नावेशः सर्वथा हरेः'' ''भुन्जन्ति ते त्वघं पापं ये पचक्त्यात्मकारणात्'' जैसे निन्दावचन असमर्पितभक्षणके बारेमें हैं ही. सुज्ञ व्यक्ति इतनेमें समझ जाता है कि समर्पण करनेमें हित ही है.
(च) मनोबलको छोटी छोटी बातोंमें इस्तेमाल करते रहनेसे वह बढता है यह तो समर्पणरीतिका हार्द है. हरेक खाद्यसामग्री या वस्त्रादिको देखते ही वह निजी उपभोगार्थ नहीं किन्तु प्रभुको अंगीकार करानेके लिये है और तत् पश्चात् वैसी समर्पित चीज ही अपने लिये योग्य है ऐसी मनोवृत्ति या संस्कार नियमित समर्पण करनेसे ही पैदा होते हैं. इस लिये ब्रह्मसंबंध होते ही कृतकृत्य हो गये वैसी प्रमादवृत्ति न रखके वस्त्र धोनें आदि छोटी छोटी सेवासंबंधी क्रियाएँ भी रोजबरोज स्वयं ही करनेका आग्रह रखिये यों श्रीआचार्यचरण आज्ञा करते हैं. पावनकारी गंगाके प्रवाहमें एक डूबकी लगाकर शेष जीवन पाप करते रहनेमें बुध्धिमत्ता है या नियमित डूबकी मारते रहनेमें ? इसके अलावा ''यस्य वा भगवत्कार्यं यदा स्पष्टं न दृश्यते तदा विनिग्रहः तस्य कर्तव्यः'' यों नियमित इन्द्रियनिग्रह करते रहनेकी आज्ञा भी श्रीआचार्यचरण देते हैं.
(घ), (क) भक्तिमार्गीय जीवनको अस्वस्थ कर देनेवाले मनोभावोंको समझकर उनसे जुडी समस्याको जानकर उसे निवृत्त करनेके उपायोंका अनुसरण करके मनोभावोंपर काबू पानेका उपदेश विस्तारसे आचार्यवचनोमें उपलब्ध है. आगे जाकर उसका विचार करेंगें.
(ग) सेवासंबंधी क्रियाओंके साथ कौनसे मनोभावोंको किस तरह बुन लेने यह बात श्रीआचार्यचरण कदम कदम पर समझाते हैं. श्रीठाकुरजीको शृंगार धरते वक्त ''अलंकुर्वीत सप्रेम... सप्रेम इति अनुद्वेगार्थम्'' कहकर श्रीआचार्यचरण प्रेमनी भावना रखनेका कहते हैं; परफेक्शन या तनावकी नहीं. सेवामें अपराध न पडे या श्रीठाकुरजीकी अवज्ञा न हो जाय इस लिये भयसंयुत होकर सेवा करनेका अनेक ठिकाने वार्तासाहित्य आदिमें कहा गया है. आरोगानेकी सामग्री सिद्ध करते वक्त सावधानता रखनेका कहा है. श्रीठाकुरजीसंबंधी जगानेसे लेकर पोढाने तककी हरेक क्रियामें कीर्तनों द्वारा व्रजभक्तोंके मनोभाव बुन लिये गये हैं, जिनका भावन और गान हमें भी करना होता है. शेष क्रियाओंमें भावनाओंको बुननेके एक प्रयासके तहत श्रीहरिरायचरण मध्यमकोटिकी भावनाएँ करनेका उपदेश देते हैं. उदा. बुहारी करते वक्त निजमंदिरकी रजके साथ अपने मनमेंसे राजसभावोनी निवृत्ति थाय वैसी भावनासे नवरत्नग्रंथका पाठ करना चाहिये. सेवामें अनवसर करते वक्त आश्रय, दीनता, वैराग्य, माहात्म्य आदिके पदोंका गान अनवसरोचित दासत्वकी भावनाको उद्बुध्ध करके अवसरोचित व्रजभक्तोंके उत्कट भावोंकी भावनाओंको बधा लेते हैं. इस अवसर–अनवसरके चक्रमें एक मध्यवर्ती भाव आत्मनिवेदनका अविच्छिन्न रखना अपेक्षित है; ''निवेदनं तु स्मर्तव्यं सर्वथा तादृशैर्जनैः''. इन सब सारथि जैसे मनोभावोंके बीच रथिसा मनोभाव उत्कंठाका है. आनंद आये वैसे प्रभुसुखार्थ अविकृत मनोरथ करते रहने चाहिये. वर्ष दौरान ऋतु तथा पर्व अनुसार एवं स्वरुचि अनुसार यथासौकर्य नित्यनियमसे विशेष कुछ हनीमून मूडमें या नवपरिणितों जैसे मूडमें भगवदर्थ सामग्री सजावट आदि सिद्ध करने चाहिये. प्रभुकी ओरसे वैसी उत्कंठाके प्रतिभावकी उत्कंठा भी रखनी ''गोकुले गोपिकानां तु सर्वेषां व्रजवासिनां यत्सुखं समभूत् तन्मे भगवान् किं विधास्यति !''

(ख) पुष्टिका बीजभाव होना यह समर्पणरीतिके अनुसरणार्थ अनिवार्य है. ''तस्य सर्वमशक्यं स्यात् मार्गेऽस्मिन् सुतरामपि, कृपायुक्तस्य तु यथा सिध्येत् साधनमुच्यते... कृपापरिज्ञानं तु मार्गरुच्या अनुमीयते'' ऐसा स्पष्टीकरण श्रीआचार्यचरण सर्वनिर्णयनिबन्धमें देते हैं. पुष्टिजीव कँई कठिन संजोगोंमें भी भजन कर सकते हैं. संप्रदायका इतिहास इस बातका साक्षी है कि अनुयायी कैसी कैसी विकट परिस्थितिओंसे पार उतरे हैं.

१८. अब अंतमें दृष्टान्त. समर्पणकी प्रक्रियासे जिनका .क्यू. बढा हो वैसे अनेक दृष्टान्त वार्तासाहित्यमें मिलते हैं. विस्तारभयसे यहाँ दो ही भगवदीयोंका उल्लेख करता हूँ. कन्नौजके सेठ दामोदरदास संभरवाला घोडे खरीदते और घोडेपर सवारी करके काम पर जाते. पर सेवार्थ जल भरने रोज खुद पैदल गागर लेकर जाते. उनके ससुरको उसमें शर्म आनेपर वैसा न करने और नोकरोंसे करवानेका आग्रह उन्होंने किया. तो दूसरे दिन दामोदरदास साथमें पत्नीको लेकर दो गागर जल भरने चल पडे ! ससुर आकर पैरोंमें पडा और माफी मांगी. काशीके सेठ पुरुषोत्तमदास क्षत्री करोडपति थे और श्रीआचार्यचरणने उनको नामदीक्षा देनेका अधिकार दिया था फिर भी उन्हें अभिमान लेशमात्र न था. रातको सत्संग करने खुद चलकर दूसरे वैष्णवके घर जाते. श्रीमंदार मधुसूदनजीके धनसंपत्त्यर्थ लुभाने पर वे लुभे नहीं और महादेवजीकी पुरीमें रहकर भी उनसे प्रभावित हुवे नहीं तो कालभैरवसे भी डरते नहीं. गायका तबेला भी वे खुद साफ करते और वैसे दीदार लेकर राजाको मिलनेमें भी उन्हें संकोच न होता. वृद्धावस्थामें तरुण जैसे जोशसे छोटीबडी सेवा सपरिवार करते. उत्तम सामग्री देखते ही आरंभित तीर्थयात्रा भी समेटकर वापस घर आकर श्रीठाकुरजीको वह आरोगावनेकी उत्कट च्छा उन्हें हो जाती और उसका प्रसाद पहले वैष्णवोंको आग्रहपूर्वक लिवाकर फिर स्वयं लेते थे.

यों संक्षेपमें आधुनिक पाश्चात्य संदर्भमें समर्पणरीति फुल्ली फीट है. उसका अनुसरण आठमेंकी एक या अनेक बुध्धिमत्तासे संपन्न व्यक्ति आनंदसे कर सकता है. उसमें मनोभावोंको बुन लेने तथा उनपर काबू पानेकी क्षमता प्राप्त करनेका सूक्ष्म व्यवस्थित कार्यक्रम है; जिसका पालटों या सैनिकों या खिलाडीओंके प्रशिक्षण जैसे आधुनिक अभ्यासक्रमोंमें सरासर अभाव है. परंतु समर्पणरीति गो.श्रीकृष्णजीवनजी महाराजश्रीके शब्दोंमें ''सार्वदेशिक और सार्वकालिक है पर सार्वजनिक नहीं''.

३. भारतीय संदर्भ

त्रिविधमार्गाधिकार

एक ऐसी व्यापक मान्यता बदरादासे प्रवर्तित की जा रही है कि ज्ञानमार्ग बुध्धिजीवीओं (बहुत आ.क्यू.वालों)के लिये है, कर्ममार्ग कर्मठ (बहुत वोलीशन क्वोशन्ट = वी.क्यू. वालों)के लिये हैं जब कि भक्तिमार्ग उन दोनोंसे रहित ठोठ और आलसीओंके लिये है.

परंतु इन मार्गोंका उपदेश करते शास्त्र और उन उन मार्गोंपर चलते साधकोंके जीवनवृत्तान्त देखें तो ऐसा बिलकुल नहीं लगता. बल्कि श्रीआचार्यचरण तो शास्त्रार्थनिबंधमें आज्ञा करते हैं कि को शास्त्राभ्यासपरायण विद्वान या शास्त्रविहित कर्मपरायण साधक यदि कृष्णभजन नहीं करता है तो वह उसका महामोह और खुदकी छलना है; उसकी नियतिमें जन्ममरणके फेरे ही लिखे होंगें.

इतिहास देखें तो भक्तिमार्गानुयायीओंमें राजा, दीवान, विद्वान, कवि, सैनिक या चोर भी प्राप्त होते हैं. सूरदासजीकी प्रतिभा छह रशियन समेत विश्वभरके संशोधकोंको पी.एच.डी. करने प्रेरित कर चुकी है. भारतमार्तण्ड श्रीगट्टूलालाजी शतावधानी थे. भारतेन्दु बाबु हरिश्चन्द्र भारतमें आधुनिक पत्रकारत्व एवं नाटकोंके प्रवर्तक, स्वदेशी आंदोलनके प्रणेता आदि बहुमुखी प्रतिभासे संपन्न थे. सो ऐसी बिनपायेदार मान्यताएँ दिमागसे निकालकर शास्त्रके आधारपे समझनेका प्रयास करें.

''निर्विण्णानां ज्ञानयोगो कर्मयोगस्तु कामिनाम्, न निर्विण्णो नातिसक्तो भक्तियोगस्तु सिध्धिदः''. श्रीभागवतके इस श्लोकानुसार बुध्धिमत्ता या कर्मठता कौन किस मार्गका अनुसरण करने लायक है ये तय करनेके मापदंड नहीं हैं. आधुनिक परिभाषाके हिसाबसे .क्यू. मापदंड है अधिकारिताका. ज्ञानमार्ग संसारसे विरक्त हो उनके लिये है. कर्ममार्ग आलोक–परलोककी कामनावालोंके लिये है. भक्तिमार्ग इन दो ध्रुवोंके बीच जीते किंचित् विरक्त तो किंचित् संसारानुरक्त साधकोंके लिये है.

अधिकारत्रैविध्यका बीज मनस्विता / भावनाशीलता

ऐसा क्यों ? ''मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः''. बुध्धिमत्तासे बढकर भावनाशीलता हमें सही या गलत पथपर चढानेमें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है. भावनाओंके बसमें आदमी आत्मघाती या जनसमूहघाती आतंकवादी हमले करनेसे भी नहीं कतराता. बुध्धि उसमें ब्रेकके बजाय एक्सलरेटरका काम करके हमलेको सुआयोजित कातिल बना देती है.

ऐसा ही हाल कर्मठताका है. अर्जुनका विषाद उसके .क्यू.के कारण है; बुध्धिमत्ता या कर्मठताके कारण नहीं. दुर्योधनके प्रसिध्ध उद्गार ''जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः'' भावनाशीलताके आगे बुध्धिमत्ता और कर्मठताकी हारके स्वीकारकी ही घोषणा है. लोकसभा या विधानसभामें सक्रिय सदस्य स्पीकरके लगातार जारी आदेशोंको माने बिना शिस्तको छोडकर नाराबाजीसे शुरुआत करके हाथापायीपर आकर कामकाज ही रुका देते हैं और उन्हें घसीटकर बाहर निकालने पडते हैं !

जैनमतमें तो ज्ञानोत्पत्तिकी प्रक्रियामें ही एक ''हा''का चरण माना गया है, जिसमें इन्द्रियोंद्वारा ज्ञान होता हो उस दौरान ही भावनाएँ अपना सहयोग बिनमांगे ही दे देती हैं. वे कहते हैं कि वर्ना तो एक ही किताब आदमीको पाठ्यपदार्थ और दीमकको खाद्यपदार्थ तया कैसे अनुभूत होती है ? अमेरिकाका पेलेस्टान, रान, राक, अफघानिस्तान, पाकिस्तान, इझरायल आदि प्रतिका नजरिया निजी स्वार्थसे प्रभावित ज्यादा और वास्तविक कम है.

इसी लिये यदि अपन विविध धर्मोंके दैनिक आचरणसंबंधी उपदेशोंमें को साम्य खोजनेका प्रयास करें तो पता चलता है कि सत्य, अक्रोध, निष्कपटता, निर्व्यसनता, सुचारित्र्य, विश्वसनीयता, पवित्रता, परोपकारकता, सदाचार, अपरिग्रह आदि सर्वत्र सराहनीय हैं, क्योंकि यह सब गुण अपनी मनोवृत्तिओंपर लगाम रखते हैं. धार्मिक व्यक्ति मनोवृत्तिओंपर काबू रखकर सीधे रस्ते आगे बढता रहे तो

सांसारिक जंजाल, कामनाओं और दुःखोंसे मुक्ति मिल सकती है.

भावनाशीलता और अहंता–ममता

भावनाशीलताको समझनेके लिये अहंता और ममताको समझने चाहिये. अपन अपना वर्णन जिस तरहसे करें वह अहंता (उदा. पीठाधीश) और अपने हों वेसे जिस जड–चेतन पदार्थोंका वर्णन करें (उदा. मेरी भेट, मेरी सृष्टि) वह ममताकी मनोवृत्ति है. ये दोनों वृत्तियाँ रबरके गुब्बारे जैसी स्थितिस्थापक होनेसे आदमी जीवनभर उनमें फूंक मारकर उन्हें फुला सकता है; क्योंकि जीवनमें उतार–चढाव या जड–चेतन वस्तुओं–परिचितोंकी आवनजावन तो सतत होती ही रहती है. तकलीफ यह है कि ये मनोवृत्तियाँ न खुद मिलझुलकर शांतिसे रहती हैं न आदमीको रहने देती हैं. फिर भला आदमी कहाँसे शांतचित्तसे विचार करके सच्चा निर्णय कर पाये कि उसे क्या करना ? भ्रष्टाचारी अधिकारी, चाहे सरकारी हो या मंदिरके, अपनी सफामें परिवारकी प्रगतिके ममतास्पद ध्येयको आगे कर देते हैं ! इस लिये इन दोनोंपर नियंत्रण होना जरुरी है.

अहंता–ममता और त्रिविध मार्ग

ज्ञानमार्ग ऐसे विरक्त साधकोंके लिये हैं जो ममताको बसमें रख सकते हैं पर अहंता अभी भी जिनके काबूमें नहीं. कर्ममार्ग ऐसे ऐहिक–पारलौकिक कामनावाले साधकोंके लिये है जिनकी अहंता तो मानों घुल ग है पर ममता बहोत है. तो भक्तिमार्ग ऐसे साधकोंके लिये हैं जो अहंता–ममता दोनोंसे समान संपन्न हो. तीनोंमेंसे कोई ऊंचा नहीं क्योंकि तीनों ही मरीझ हैं, स्वस्थ नहीं. जैसे रोग भले भिन्न हो; एकको कफका प्रकोप हो तो दूसरेको पित्तका तो तीसरेको वायुका; सहीमें दूर करना है प्रकोपको, कफ या पित्त या वायुको नहीं. अहंता या ममताको नहीं, उनके अतिरेकको.

अस्वस्थ अहंता–ममता काम–क्रोध–लोभ–मोह–मद–मत्सरका रूप लेकर बाहर आती है. श्रीआचार्यचरण आज्ञा करते हैं: ''कामेन कर्मनाशः स्यात् क्रोधेन ज्ञाननाशनं, लोभेन भक्तिनाशः स्यात्''. अतः साधक इन भीतरी शत्रुओंसे सावध रहे ये जरुरी है. बकासुरवधके प्रसंगमें श्रीआचार्यचरण आज्ञा करते हैं कि असत्य और लोभकी दो चोंच सदानंद श्रीकृष्णके सत् और आनंदको ग्रस लेती हैं. सर्वनिर्णयनिबन्धमें श्रीआचार्यचरणने कामादि भाव कैसे पनपते हैं उसका विशद सूक्ष्म विश्लेषण किया है; विस्तारभयसे यहाँ उसे नहीं लिया.

यद्यपि अहंता ममता और मोशनल इन्टेलिजन्स सुपरिभाषित शब्द हैं तो भी सरलतासे समझना हो तो एक समीकरण ऐसा बनाया जा सकता है कि जिसकी अहंता–ममता स्वस्थ हो उसमें मोशनल इन्टेलिजन्स ज्यादा. अहंता–ममताको स्वस्थ करनेकी हरेक मार्गके पास अपनीअपनी रीति है. पर संक्षेपमें समझें तो उनमें भी कुछ साम्य है. जेसे भावना करनी ये सिर्फ भक्तिमार्गमें नहीं है. मूलमें तो वह कर्ममार्गमें ज्यादा प्रचलित शब्द और प्रक्रिया है. हरेक यज्ञमें उच्चरित मन्त्रोंमें तत्तद् क्रिया करते वक्त करनेकी भावना कही होती है, अपने यहाँके कीर्तनोंकी भांति. जैसे यज्ञके अश्वकी लगाम पकडते वक्त ''मैं ये अमृतकी डोर पकड रहा हूँ'' ऐसा मन्त्र बोलते मनमें वैसी भावना करनी होती है. ज्ञानमार्गमें भी वैसे ही प्रतीकोपासनादि प्रकार हैं. भक्तिमार्ग तो भावप्रधान होनेसे कुछ कहना आवश्यक नहीं. ऐसी भावनाएँ करनेसे मनोवृत्ति उदात्त बनती है और साधनामें मन लगता है. ऐसे अन्य भी साम्य हैं तीनों मार्गोंमें.

भक्तिमार्ग और समर्पणरीति

त्रिविध अधिकारीके लिये त्रिविध मार्ग हैं. उनमेंके पुष्टिभक्तिमार्गाधिकारी जीवके लिये अपने यहाँ समर्पणरीतिका उपदेश है. भक्तिके यौगिकार्थ प्रेम+सेवामेंसे सेवाकी प्रक्रियान्तर्गत अपने अहंतास्पद और ममतास्पद सर्वस्वका भगवद्विनियोग इस मार्गमें अभिप्रेत है. ऐसी समर्पणात्मिका सेवा प्रेमकी वृध्धिके अनुकूल संजोग जुटाती है तथा प्रतिकूल संजोगोंकी निवृत्ति भी अनायास सिध्ध कर देती है.

यद्यपि ये भगवद्सुखैकप्रयोजनवाली सेवाप्रणाली को .क्यू.के डिसओर्डरकी ट्रीटमेन्टका कार्यक्रम नहीं है फिर भी समर्पणका वस्तुस्वभाव ऐसा है कि औसतन विरक्तानुरक्त जीवोंकी अहंताममता उससे स्वस्थ हो जाय. ''ततः संसारदुःखस्य निवृत्तिः ब्रह्मबोधनम्''की टीकामें श्रीगुसांजी आज्ञा करते हैं ''भगवत्सेवायामभिनिविष्टचित्तस्य यद्यपि अनभिलषिते ते तथापि वस्तुस्वभावाद् भवत''.

समर्पणके इस वस्तुस्वभावको ग्रंथ सिध्धान्तरहस्यमें गंगावत् पावनकारी तया सराहा है. कारण यह समग्र सृष्टिका प्रवाह समर्पणका ही वस्तुस्वभाव लिये हुवे है: ''क्रीडार्थमात्मन इदं त्रिजगत् कृतं ते'', ''शावास्यमिदं सर्वम्''. यों भगवत्क्रीडोपयोगी होनेमें ही सृष्टिकी सार्थकता है. जीव अपनी अहंताममतावशात् इस सृष्टिके प्रवाहमेंसे बाहर कालप्रवाहमें गिर जाता है. जैसे ही समर्पण शुरु किया कि सृष्टिके मुख्य प्रवाहमें मग्न हुवे. अहंता–ममता मानों इस प्रवाहमें नहाकर अपरसमें आ जाती है (सोहनीसे बुहारी करते डोरी तूट जानेपे भक्तने अपनी जनो तोडकर उससे बांधकर बुहारी की !). फिर तो भगवानको गालियाँ भी दी जा सकती है अपरसमें ही ! फिर तो भगवत्प्रेम न बढे तो ही आश्चर्य !

बात केवल अहंता–ममताके संस्कार तक सीमित नहीं. भक्तिके दो अंग माहात्म्यज्ञान और स्नेह हैं. छूटे हों तब उन दोनोंके कुछेक पहलू ऐसे भी हैं कि जो भक्तिमें सहायक न हो. उदा. ऐसा भगवन्माहात्म्य कि भगवान सब लोगोंकी सब ऐहिक–पारलौकिक कामनाएँ पूरी करने सक्षम हैं तो मेरा भी भला करेंगें. या ऐसा स्नेह कि जिसमें भगवानसे रुठकर सेवादि छोड दे को. इसके अलावा सेवा या दीक्षाग्रहण–प्रदान भी समर्पणसे अन्य भिखारीपने जैसे अन्यान्य भावोंसे हो सकते हैं. समर्पणरीति ये हरेक माहात्म्यज्ञान, स्नेह, सेवा, दीक्षादि का संस्कार करके उन्हें भक्तिमय बनाती है.

वर्तमानस्थिति

आज संप्रदायमें समर्पणरीतिसे न जीनेवालोंके विषवचन ऐसे कुटिल होते हैं कि उनके मन और क्रियाओंकी कुटिलताकी तो कल्पना

करते भी काँप जायें: ''अर्थार्थी भी भक्त तो होता है न. आजकल तो प्रायः ऐसे ही होते हैं, कि मैं भगवानकी सेवा करुं और भगवान मेरा भला करे. भले ही जघन्याधिकारी हो, अधिकारी तो है ही न !'' ''पब्लिकके पैसोंसे सेवा करनेसे हमें अहंकार नहीं आता !'' ''अपने यहाँ तो न्योछावर ली जाती है, भेट लेते ही नहीं ! अपने यहाँ प्रभु देवाधिदेव हैं पर तो भी देव नहीं अतः देवद्रव्य होता ही नहीं !'' ''मंदिरमें आयेंगें नहीं तो सेवा सीखेंगें कहाँसे ? यद्यपि आजकलके धांधलीवाले जीवनमें कहाँ सबको घरमें स्थल-समयका अवकाश होता है ? उनकी ओरसे भले ही जाहिरमंदिरमें सेवा हो. जीव दैवी होगा तभी तो मंदिरमें आया; उसका द्रव्य दैवी कहा जायेगा, उसे कैसे छोडें ?'' ''वैष्णवो आचार-अपरस पालते नहीं इस लिये सेवा न करनी और बुझुर्ग गोलोकवासी होते ही उनके श्रीठाकुरजीको तमाम गहने-पात्रादि सहित गुरुघर पाछे पधरा देने. गुरुके तो रोमरोममें ठाकुरजी बिराजते हैं.'' ''निष्प्रयोजन भक्तिके सिध्धांत सच्चे पर वे तो पुष्टिपुष्टि और मर्यादापुष्टि जीवोंके लिये. एन.आर.आ.ओंको वे अपीलिंग नहीं लगते. प्रवाहपुष्टिजीवोंको मार्गमें खींचने गुरुओंको सिध्धांतविरोधी गोरखधंदे भी करने रहे !'' ''बेहिसाब ब्रह्मसंबंधदीक्षा देनेसे आपाधापी फैलती है संप्रदायमें ये बात सच है, पर जब तक सब मिलके सर्वानुमतिसे वैसा न करनेका संकल्प न करें तब तक उसके इकतरफा अमलकी धांधल मैं नहीं करुंगा ! नहीं तो मुझे अकेलेको घाटा होगा !'' (यद्यपि ये वक्ता इस वचन उच्चारनेके २५ वर्ष पहलेसे और तत्पश्चात् १५ वर्षसे धमधोकार ब्रह्मसंबंध देते रहे हैं !)

इसके समांतर को व्यभिचारी पुरुषका वचन कुछ ऐसा हो सकता है ''बेहिसाब यौनसंबंध बांधनेसे एड्स पैलता है समाजमें ये बात सच्ची, पर जब तक सब मिलकर सर्वानुमतिसे व्यभिचार न करनेका संकल्प न करें तब तक उसके इकतरफा अमलकी धांधली मैं नहीं करुंगा !'' सोचना ये है कि यदि सभी स्त्रीपुरुष ऐसी विचारधारावाले हों जायें तो एड्सका फैलाव रुकेगा कैसे ?

खैर. एक आश्चर्यकारक बात है कि एकके बाद एक धार्मिक संप्रदायकी बदबोई करके उन्हें खतम करनेके एक विलायती साजिशके प्रारंभिक चरणमें जब लायबल केसमें संप्रदायको व्यभिचारी गुरु-शिष्याओंके संप्रदायतया बदनाम करनेके प्रयास हुवे, उस वक्त देशप्रेमी जैनादि धर्मोंके विद्वानोंने तब और विदेशी विद्वानोंने बादमें अपने संप्रदायके ग्रंथोंके वचन उद्धृत करके ऐसा सिद्ध करती किताबें अंग्रेजीमें लिखी और छापी कि पुष्टिसंप्रदायके सिद्धांत तो भगवानके प्रति समर्पणरीतिका उपदेश देते हैं, गुरुके प्रति व्यभिचाररीतिका नहीं ! अपन ही आज क्यों सिद्धांत सुनकर भी न समझनेका और न अनुसरनेका दुराग्रह रखे हुवे हैं ? जिस गर्वसे आज अपन खुदको पुष्टिमार्गी कहवाते हैं उसके दस प्रतिशत गर्वसे भी समर्पणमार्गी बनें और कहवायें तो संप्रदाय नवपल्लवित हो उठेगा. ''भावस्तत्राप्यस्मदीयः सर्वस्वश्चैहिकश्च सः, परलोकश्च तेनायं सर्वभावेन सर्वथा, सेव्यः स अेव गोपीशः विधास्यत्यखिलं हि नः''.

४. समर्पणरीतिकी जीवनदृष्टि

कवि मकरन्द दवे ''सां'' कहते हैं

''मेरा सबकुछ है मानकर जीवनको स्वीकारुंगा
मेरा कुछ भी नहीं मानकर मृत्युके लिये तैयार रहूँगा.''

इस एक काव्यपंक्तिमें एक जीवनदृष्टि भर दी है ! तथा अहंता-ममताके साथ कैसे निपटना ये भी समझाया है.

जीवन एक समष्टि है; उसमें अनेकविध किरदार अपने होते हैं पुत्र, पौत्र, भा, विद्यार्थी, सेठ/कर्मचारी, पति, पिता, गृहस्थ, नागरिक, अनुयायी, दादा... ये हरेक अपने व्यक्तित्वका एक पहलू ही हैं. उसमेंके को एकका अस्वीकार वह अंतमें जीवनका ही अस्वीकार है, क्योंकि जीवन उन उन पहलूके बिना परिपूर्ण नहीं होता. अतः जीवनको हृदयपूर्वक स्वीकारनेका सीधासीधा अर्थ ये है कि हम अपनी अहंता-ममताको इतनी फैलायें, व्यापक बनायें कि ये हरेक भूमिकाको न्याय दे पायें; किसीको हरिलाल गांधीकी भांति विद्रोह न करना पडे.

बाधा परंतु जीवनकी अंतिम घडीयाँ गिनी जाती हो तब आती है. मृत्यु माने स्टेजपरसे एक्झिट. उस वक्त प्राण सूक्ष्मशरीरसे वियुक्त हो वैसी प्रक्रिया तो संपन्न हो जाती है पर जीवनभर जिनके साथ जुडे रहे वैसे अहंताममतास्पद विषयोंमेंसे अहंताममता छूटे यह मुश्किल है. परिणामस्वरूप आत्माके साथ अहंताममतावाला सूक्ष्मदेह लगा रहता है और चौरासी लाख योनिमें भ्रमणका चक्कर चलता ही रहता है.

इससे बचने यदि जीवनभर ''मेरा कुछ भी नहीं''का वैराग्यका भाव पनपायें तो वह भी सरल नहीं, और जडभरतजीका मृगबालमें चित्त रह गया वैसा हो सकता है. कुल मिलाकर संतुलन ला पाना मुश्किल है. एतदर्थ कवि सूचित करते हैं वैसे जीवनके दौरान ही सब फर्जोंके स्वीकार और सब हक्कोंके अस्वीकारकी भावना पनपानी चाहिये.

यद्यपि ये जीवनदृष्टि जितनी सीधी और सरल स्पष्ट समझमें आती है उतनी ही आचरणमें लानी मुश्किल है, फिर भी सोचें तो जाने-अन्जाने अपन आचरणमें उसका अनुसरण तो करते ही हैं. उपक्रममें जो मेजिक स्वीचकी बात छेडी थी उसके अनुसंधानमें यह समझें कि जीवनमें स्वीकार यह प्रवृत्तिकी और अस्वीकार यह निवृत्तिकी शक्तिशाली मेजिक स्वीच है, चालु खाताकी शपथ लेने जैसी नहीं. यदि परिणीता ससुरालको अपने घरतया स्वीकारे तो स्वतः उसकी देखभालमें प्रवृत्त हो जाती है और दम तूटने तक लगी रहती है. किन्तु पराया ही माने तो उसके नामपर फ्लेट हो तो भी सौतेली माँ सिर आन पडी जिम्मेदारी ढोती हो वैसा वर्ताव करती है. ससुरालवाले भी बहूको अपने परिवारकी सदस्यतया चाहें या पराई पैदाईश जानकर धिक्कारें तो उसके पीछे उनका स्वीकार या अस्वीकार ही काम करता होता है. ऐसा नौकरीमें या धार्मिक संप्रदायको अनुसरने आदि हरेक ठिकाने होता ही है. पढनेमें अनुत्सुक विद्यार्थी रखडनेमें या खानेपीनेमें बिना कहे अग्रेसर हो जाते हैं क्योंकि वे जीवनमें उन्हें अपनी प्रवृत्ति लगती हैं. किसीको स्वदेशी चीजें ही अपनी लगती हैं तो किसीको

म्पॉर्टेड ही ! किसीको मेक–अप करना या देखना तक पसंद नहीं आता और किसीको मेक–अप किये बिना चैन ही नहीं आता सो मोर्निंग वॉकमें और मृतकके परिवारसे मिलने या बिमारका हाल देखने भी मेक–अप और फॅशन करके जाते हैं ! किसीको सादगी भाती है तो किसीको धूमधाम. यों जिसे जीवनमें स्वीकारें उसमें प्रवृत्त होना और न स्वीकारें वहाँसे निवृत्त होना सहज मानवस्वभाव है. प्रेम अनबनी होते नफरतमें पलट जाय तो उसके पीछे ये ही मनोवृत्ति काम करती है. नौकरी करनेवाला आदमी रीटायर्ड होते ही उसके सहकर्मिओं एवं खुदका भी वर्ताव तुरत बदल जाता है.

जो इस जीवनदृष्टिको समझ गये तो समर्पित भगवत्सेवककी जीवनदृष्टि समझनेमें बहुत तकलीफ नहीं पडेगी. यद्यपि वैसा को एक आचार्यवचन नहीं परंतु उपलब्ध वचनोंके आधारपे इस काव्यपंक्तिके समांतर एक विधान बनाना हो तो बना सकते हैं कि

मेरा सब भगवदर्थ है मानके जीवनको स्वीकारुंगा, मेरा कुछ भी नहीं मानके यथायोग्य
उपभोग/त्याग/विनिग्रह/उपेक्षा–अपमानादि/निभाव के लिये तैयार रहुंगा.

अब इस विधानको समझनेका प्रयास करें.

१. ज्ञानी और भक्तका अंतर समझाते श्रीआचार्यचरण शास्त्रार्थनिबंधमें आज्ञा करते हैं कि ज्ञानीको ब्रह्मानंदकी अनुभूति केवल आत्मासे ही होती है जब कि भक्तको भजनानंदकी अनुभूति आत्मा–देह–इन्द्रिय–अंतःकरण और परिवारसहित होती है. आत्मनिवेदन करते वक्त जीव अपना सबकुछ भगवानको समर्पित करनेकी घोषणा करता है. अतः शेष जीवनमें दैनिक कार्यक्रम ही ऐसा जमाना रहा कि सर्व क्रियाकलाप भगवदर्थ हो. प्रभुने जो कुछ शक्ति–सामर्थ्य दिये हो उसके अनुरूप भगवत्सेवापरायण होना है. सुबह उठो तो सेवा करने, देहशुध्धि करो तो सेवा करने, रसो करो तो सेवार्थ, कमाने या खरीदी करने जाओ तो सेवार्थ, प्रभुको आरोगाकर खाओ–पीओ तो सेवा करने लायक देहका सामर्थ्य रहे इस लिये, आराम करो या सो जाओ तो सेवामें सुस्ती न लगे इस लिये... श्रीआचार्यचरण निरोधलक्षण ग्रंथमें इन्द्रियोंका ऐसा भगवद्विनियोग समझाते वहाँ तक आज्ञा करते हैं कि सेवापरायण संततिकी उत्पत्तिके निमित्तसे जननेन्द्रियका भी भगवद्विनियोग संभव है !

जो जो लोकप्रिय हो और खुदको भी पसंद हो तत्तद् अन्न–वस्त्र–आभूषण–संगीतादि सर्वका भगवद्विनियोग करना है. पर ''मेरा सब'' ही, परायेका नहीं. खुदने पसीना बहाकर सन्मार्गसे उपार्जित किये द्रव्यके छोला अपेक्षित हैं, गामसे भीख मांगके बटोरे द्रव्यका छप्पनभोग नहीं. और फिर ''मेरा सब'' माने सर्व, पर प्रत्येक नहीं. औषधादि भोग न धरें. सेवक होनेकी मर्यादाके अनुरूप ही भोग धरें.

२. यों भगवद्विनियोग करके पश्चात् वैसे समर्पित पदार्थोंका उपभोग करते वक्त श्रीआचार्यचरण ''प्राप्तं सेवेत निर्मम''की भावना रखनेका कहते हैं. जो प्राप्त हुवा उसमें ''मेरा है'' ऐसी ममता रखे बिना उसका उपभोग करें. अर्थात् उसे अपनी संपत्ति न मानकर भगवानने प्रसन्न होकर दिया हुवा = प्रसादी जानकर उपभोग करो. ऐसे ही घर–परिवार–संपत्ति सर्वके उपभोक्ता प्रभुको जानके प्रभुके सेवकतया जो प्रसादी मिले उसका उपभोग ममतारहित होकर करना है.

३. श्रीआचार्यचरण आज्ञा करते हैं ''भार्यादिस्नुकूलश्चेद् कारयेद् भगवत्क्रियाम्, उदासीने स्वयं कुर्यात् प्रतिकूले गृहं त्यजेत्''. अतः श्रीदयारामभा कहते हैं ''जे हरिने भजता वारे तेने तुरत तजो''. भले हमने सर्व पदार्थोंका निवेदन किया हो पर प्रभुकी इच्छा उनमेंके प्रत्येकका अंगीकार करनेकी नहीं होती. सो उनमेंका को अपनी भक्तिमें बाधा करते हों तो पहले उनके प्रतिकी अहंता–ममताका त्याग करके फिर अनिवार्य हो तो उनका भी त्याग करना रहा.

४. वैसे ही जिन इन्द्रियादिका जब स्पष्ट भगवत्कार्यार्थ उपयोग न होता नजर आये तब उनका विनिग्रह करें; उन्हें विषयोंमें भटकने न दें. नहीं तो अहंताममतास्पद विषयोंकी को नई जंजीर गले मँढ जायेगी. अतः निरोधलक्षण ग्रंथमें श्रीआचार्यचरण आज्ञा करते हैं ''यस्य वा भगवत्कार्यं यदा स्पष्टं न दृश्यते, तदा विनिग्रहस्तस्य कर्तव्य इति निश्चयः''. तथा सर्वनिर्णयनिबंधमें आज्ञा करते हैं ''स्वधर्माचरणं शक्त्या विधर्माच्च निवर्तनम्, इन्द्रियाश्वविनिग्राहः सर्वथा न त्यजेत् त्रयम्.''

५. ''भार्यादीनां तथान्येषाम् असतश्चाक्रमं सहेत्'' ऐसी विवेकधैर्याश्रय ग्रंथमें श्रीआचार्यचरण आज्ञा करते हैं. यदि परिवारजन या पडौसी आदि सेवामें बाधा न करते हों और सहयोग भी न देते हो तो उनकी उपेक्षा करनी. वे अपमानादि करें तो उस ओर दुर्लक्ष्य करके प्रतीकार किये बिना सहन कर लें.

६. ऐसे परिवारजन या इन्द्रियादि सेवाके प्रति उदासीन हो तो भी ऐसी शुभकामनासे उनका निभाव करें कि जैसे एक मरीझ उसके रोगग्रस्त देहका रखरखाव करता है: किसी दिन वो भगवत्कार्यमें उपयुक्त होंगें. ''रुग्णवदातुरं'' आज्ञा करके श्रीहरिरायचरण वैसे परिवारजनोंका निभाव करनेका कहते हैं.

यों संक्षेपमें एक दंडेसे सर्व विषयोंको न हांकते सेवोपयोगिता/अनुपयोगिताके आधारपर प्रतिभाव देने होते हैं.

ऐसी समर्पित जीवनदृष्टि और चरित्र बन जाये तो वैसे सेवकको अहंता–ममता को पीडा नहीं देती. संसारदुःखनिवृत्ति और ब्रह्मबोध उसे अनायास प्राप्त हो जाते हैं. उसके लिये मृत्यु तक राह देखनेकी भी जरुरत नहीं रहती; जीते जी अहंता–ममता योग्य कद अनुसार संसारमें कट और भगवत्सेवामें जुट जाती है. श्रीआचार्यचरणके शब्दोंमें ''हरिणा ये विनिर्मुक्ता ते मग्ना भवसागरे, ये निरुध्धास्त एवात्र मोदम् आयाक्त्यहर्निशम्''; हरिरूपी जंजीरसे बंधे आनंद पाते हैं और बिछुडे भवसागरमें डूब जाते हैं. ऐसे बंधे जीवोंको श्रीआचार्यचरण कहते हैं: ''नातः परतरो मन्त्रो (कर्ममार्ग) नातः परतरः स्तवः (उपासनामार्ग) नातः परतरा विद्या (ज्ञानमार्ग) तीर्थं नातः परात्परम्''.

चौरासी–दोसौ बावन वैष्णवोंकी वार्ता तथा पूर्वाचार्योंके जीवनचरित्र ऐसे दृष्टान्तोंसे सभर हैं. सेठ पुरुषोत्तमदासकी बेटी रुक्मिनीकी वार्ता देखें तो काशीके रहीश होनेपर भी २४ साल बाद गंगास्नान करनेका अवकाश मिला ऐसे समर्पणरीतिमें मग्न रहते. श्रीगुसांजी आज्ञा करते कि श्रीठाकुरजी सदा उनके ऋणी रहेंगें ! उनकी देह अशक्त होनेपे उन्हें हुवा कि अब यह देह सेवालायक न रही तो क्या कामकी ?

छूटे तो अच्छा. और जब छुटी तब गंगाजीने रुक्मिनीको पाया ! श्रीदयारामभाके शब्दोंमें ''राधा–माधव मनमां वस्या रे जेना, आठे प्रहर ते आनंदमां म्हाले... तीर्थ सहु तेना पगमां धस्या''.

५. मनोभावोंसंबंधी उपदेश

श्रीआचार्यचरणने विविध प्रकरणग्रन्थोंमें विविध स्तरके मनोभावोंके अनुसार जो उपदेश दिये हैं उन्हें अब देखें. एतदर्थ षोडशग्रन्थ, शिक्षाश्लोकी, सर्वनिर्णयनिबन्धका भक्तिप्रकरण आदि देखने चाहिये. विस्तारभयसे यहाँ हरेक ग्रन्थका सूक्ष्म विश्लेषण न करके केवल दिशानिर्देश किया है. अधिक जिज्ञासा रखनेवाले टीकाओं सहित उन उन ग्रन्थोंका अवगाहन स्वयं करें.

आदि मध्य और अंतमें एक ही बात दोहराई जाती हो तो उसपर कितना जोर है ये स्पष्ट होता है. वैसे यहाँ सिध्धान्तमुक्तावली, निरोधलक्षण और शिक्षाश्लोकीमें प्रभु लौकिक मनोभावोंके विषय नहीं है ये समझाकर व्रजाधिपके प्रति अलौकिक निरुपाधिक भावसे संपन्न व्रजभक्तोंका अनुसरण करके भावना करनेका उपदेश दिया है. इसका सार श्रीहरिरायचरण शिक्षापत्रमें आज्ञा करते हैं ''तस्य सेवां प्रकुर्वीत यावज्जीवं स्वधर्मतः, न फलार्थं न भोगार्थं न प्रतिष्ठाप्रसिद्धये, श्रीमदाचार्यमार्गेण नान्येनापि कदाचन, न कल्पितप्रकारेण न दुर्भावसमन्वयात्.''

ग्रंथ कृष्णाश्रय एक नवागंतुक भक्तिमार्गी या शरणमार्गीके शरणागतिसंबंधी मनोभावोंके संदर्भमें है. ग्रंथ विवेकधैर्याश्रय वैसे साधकके अभक्तिमार्गीय या अशरणमार्गीय मनोभावोंके बारेमें है. ग्रंथ नवरत्न और चतुःश्लोकी एक भक्तिमार्गीके भक्तिमार्गीय मनोभावोंके संदर्भमें हैं. अंतमें ग्रंथ अन्तःकरणप्रबोध भक्तके मनोभावोंके संदर्भमें है.

सर्वप्रथम ग्रंथ कृष्णाश्रयमें कलिकालमें अन्यान्य मार्गोंकी असारता बताकर भगवद्शरणागति पनपानेका उपदेश है. उसमें पहले तो कर्ममार्गके छह अंगरूप काल–देश–द्रव्य–कर्ता–कर्म–मंत्रकी दोषग्रस्त होनेके कारण असाधकताका वर्णन किया है. फिर कर्म–ज्ञान–उपासना–भक्ति–प्रपत्ति इन हरेक मार्गमें कृष्णाश्रयकी आवश्यकता समझाई है. इसमें सांप्रत परिस्थितिमें भगवन्माहात्म्य जानकर विश्वास अन्यत्रसे निवृत्त होकर एक प्रभुमें ही सुदृढ हो वैसे मानसिक चिन्तन और तत्पश्चात् वाचिक पठन तथा कायिक शरणगमनकी प्रेरणा है.

ग्रंथ विवेकधैर्याश्रयमें एक एक अभक्तिमार्गीय एवं अप्रपत्तिमार्गीय मनोभावको (१) अनुभव करके (२) समझकर (३) उसके ठिकाने कौनसी परिणामलक्षी भक्तिमार्गीय भावना करके उसे दूर करना ये प्रक्रिया समझाई है. उसमें विवेक, धैर्य और आश्रयके शीर्षकके तहत विविध भावनाएँ दिखाई हैं. एक दृष्टान्त देखें तो ''अभिमानश्च सक्त्याज्य स्वाम्यधीनत्वभावनात्''. इसमें (१) तुम्हारे मनोभावको वह अभिमान है ऐसा अनुभव करके (२) वह त्याज्य ही है ऐसा समझकर (३) उसके ठिकाने ''स्वामीके मैं अधीन हूँ'' वैसी भक्तिमार्गमें अग्रेसर करनेवाली परिणामलक्षी भावना करनेका उपदेश है. (यह वही प्रक्रिया है जो मोशनल इन्टेलिजन्स बढाने इस्तेमाल की जाती है. क्योंकि गलत भावनाको केवल ज्ञान या समझसे निवृत्त करनेके बजाय उसके ठिकाने दूसरी योग्य भावना करनी यह ज्यादा कारगर उपाय है ऐसा तजुरबेसे पाया गया है.)

विवेकमें प्रार्थना, अभिमान, हठ और आग्रहके मनोभावोंके ठिकाने स्वाम्यधीनताकी भावना रखकर धर्माधर्माग्रदर्शनपूर्वक अपने देहसंबंधी हो उन्हें छोडकरके अन्य भगवदाज्ञाके अनुसरणकी प्रक्रिया समझाई है. तो धैर्यमें प्रतीकार, असहन, अत्याग और स्वसामर्थ्यभावनके ठिकाने तक्रवत् देहवत् जडवत् और गोपभार्यवत् भावना करके त्रिदुःख सहन करनेका उपदेश है. अंतमें आश्रयमें बिल्कुल निम्नस्तरीयसे ले करके उच्चस्तरके मनोभाव या कृति भी हो गये हो उन सब परिस्थितिमें शरणागतिभावनका उपदेश है: दुःख हुवा, हानि हु, पाप हुवा, भय हुवा, कामादि अपूर्ण रहे, भक्तका द्रोह हो गया, भक्तिका अभाव हो, भक्तोंने अपमान किया हो, आश्रित या अंतेवासीओंने अपमान किया हो, अहंकार हुवा, अलौकिकमनसिध्धिकी कामना हु... ये और ऐसी अन्य सर्व परिस्थितिमें वाचिक मानसिक आश्रय रखनेका कहा है. तथा अन्याश्रय और अविश्वासको सर्वथा बाधक जानके वैसे अयोग्य मनोभावोंके ठिकाने ब्रह्मास्त्र–चातकभावना करनेका उपदेश है.

आगे ग्रंथ नवरत्नमें उस भक्तिमार्गीको भक्तिमार्गीय चिंताके मनोभावोंको निवृत्त करने उनके ठिकाने कैसा भक्तिमार्गीय चिंतन तादृशीजनोंके साथ मिलके करना यह उपदेश है. इसमें की जाती एवं अपने आप होती
स्व–परिवार–निवेदन–विनियोग–लोकवेदस्वास्थ्य–गुरुआज्ञाका बाध–उद्वेगादि संबंधी चिंताओंका समावेश किया है.

ग्रंथ चतुःश्लोकीमें धर्मार्थकाममोक्षरूपी चार पुरुषार्थोंके भक्तिमार्गीय स्वरूपका वर्णन करके उन्हें काया–वाणी–मनसे न छोडनेका मनोभाव पनपानेका उपदेश है.

ग्रंथ अन्तःकरणप्रबोधमें भक्तसेवकको भगवदाज्ञाके उल्लंघन या अनुसरणसंबंधी पश्चात्तापादि मनोभाव जगे तो सान्त्वनाका वाचनिक उपदेश है. साथ ही साथ नवागंतुक भक्तिमार्गीको विनियोगमें गाफिल न रहनेका आर्थिक उपदेश भी है.

यों नवागंतुकसे लेकरके सिद्धकक्षाके भक्त तकके हरेक स्तरके भक्तिमार्गीके मनोभावोंके अनुसार उपदेश श्रीआचार्यचरणने दिया है, जो आपश्रीने प्रवर्तित की हुई समर्पणरीतिको सांगोपांग सिद्ध करता है, अविचारित तुक्का नहीं.

परवर्ती आचार्योंमें श्रीगोकुलनाथजी और श्रीहरिरायजीके मनोभावसंबंधी उपदेश उल्लेखनीय हैं. ८४ वैष्णवोंकी वार्ता, २४+हास्य वचनामृतादिमें श्रीगोकुलनाथजी संक्षिप्त शैलीमें तो शिक्षापत्र और हरिरायवाङ्मुक्तावलीमें श्रीहरिरायजी विस्तारसे समझानेकी शैलीमें भक्तिमार्गीय भावनाके उपदेश देते हैं. उनके बाद नया उल्लेखनीय प्रदान खास नहीं है; यद्यपि श्रीदयारामभा आदि द्वारा धोल–पदोंके माध्यमसे गुजराती–हिंदी–व्रजभाषामें उनके लोकप्रिय भावानुवाद काफी प्रकट और प्रचलित हैं.

विहंगावलोकन करनेपे लगता है कि श्रीआचार्यचरणके मनोभावसंबंधी उपदेशोंमें सर्वत्र स्वामीसेवकभाव दृष्टिगोचर होता है जबकि

श्रीहरिरायजीने प्रायः पितापुत्रभावको उजागर किया है. अर्थात् भगवानको पुत्रवत्सल पितातया निहारके हरेक भगवत्कृतिमें हितैषी पिताका प्यार अनुभव करनेका मनोभाव पनपाना होता है. इसके बीज कहीं न कहीं ''त्वमेव माता च पिता त्वमेव'' जैसे शास्त्रवचनोमें और उपनिषदोंमें तथा वल्लभवाणीमें निबंध–भाष्य–सुबोधिनीमें बिखरे हुवे हैं ही, फिर भी उन्हें संकलित करके उजागर करनेका श्रेय निश्चित श्रीहरिरायजीको जाता है.

इतने अवगाहनके बाद एक बात समझनी है वो यह कि स्वामीसेवकभाव या पितापुत्रभावको हठात् लिपटे रहनेमें सार नहीं है. सार है अपने अयोग्य मनोभावोंको अनुभव करके समझके उनके ठिकाने जल्दी मनोग्राह्य या मनोरूढ हो सके वैसी परिणामलक्षी भावना पैदा करनेमें; किमती सेवोपयोगी काल मनके भटकनेमें व्यतीत न हो जाय ये देखनेमें. क्योंकि उद्वेगको सेवाफल ग्रंथमें श्रीआचार्यचरणने बाधकोंमें प्रथम गिनाया है.

प्रेम विरुद्ध मोशनल इन्टेलिजन्स

किन्तु विविध भावनाओंसे मानसिक स्वस्थता निभाके भक्तिमार्गमें अग्रेसर हो वही सफल भक्त है ऐसा नहीं कह सकते. प्रेम प्रभु जैसा ही नटखट होनेसे कभी अहंता–ममताको अस्वस्थ करके समग्र जीवनको हिला सकता है. भक्त राजा आशकरणदासजीकी भांति बेघर हो जा सकता है, क्योंकि ''स्नेहाद् रागविनाशः स्याद् आसक्त्या स्याद् गृहारुचिः, गृहस्थानां बाधकत्वम् अनात्मत्वं च भासते... तादृशस्यापि सततं गेहस्थानं विनाशकम्.'' पर ऐसे प्रेमपर तो स्वस्थ अहंता–ममता न्योछावर है. प्रेमसे अस्वस्थ अहंता–ममता और प्राकृत अस्वस्थ अहंता–ममताके बीच जमीन–आसमानका अंतर है. श्रीआचार्यचरण संन्यासनिर्णय ग्रंथमें आज्ञा करते हैं: ''विकलत्वं तथाऽस्वास्थ्यं प्रकृतिं प्राकृतं न हि''. ऐसी उन्मत्तावस्था तो भक्त होनेका लक्षण है, प्राकृत होनेका नहीं. श्रीगुसांजीकृत विज्ञप्तियाँ इस कक्षाकी हैं.

सिद्धकक्षाकी ऐसी दशा ज्ञानमार्गमें भी होती है, जो परमहंसकक्षा या अवधूतचर्या कही जाती है. उसमें ज्ञानीको ब्रह्मानंदानुभूतिके आवेशमें देह–परिवार, घर–कपडा या भूख–प्यास या दिवस–रातका भी होश नहीं रहता. वैसा योगमार्गीय समाधि आदिमें भी संभव है. पर वैसी विविध मार्गोंकी सिद्ध हस्तीओंको, या मजनू जैसे उत्कट प्रेमीओंको भी, को उपदेश देने या ग्रहण करनेका अवसर रही नहीं जाता.

समर्पणरीतिसंबंधी शंकासमाधान

प्र. समर्पणका कार्यक्रम दैनिक जीवनको शिस्तबद्ध बना देता है सो उसमें बंध जाते हैं और तनाव लगता है; जीवन एकसा तथा अवकाश बिनाका लगता है.

उ. पहली बात तो ये है कि समर्पणरीतिके कारण जीवन शिस्तबद्ध हो तो ये उसका गुण है या अवगुण ? नवपरिणीत पुरुष सांझको वक्तसे घर आ जाता हो तो वह ब्याहनेका प्रताप या खराबी ? वो घर पहुँचने उतावली करे और थोडा तनाव लगे ये सहज स्वाभाविक नहीं ? वैसे ही भक्तिमय कार्यक्रममें बंध जानेमें कुछ गलत नहीं; यदि रुचि हो तो.

तनाव और एकविधता सामान्यतः नेग–भोग–राग–अपरसके अत्याग्रहके कारण लगते होते हैं. समर्पणरीतिका विस्तार उसमें सम्मिलित परिवारजनोंके शक्तिसामर्थ्यानुसार हो तो उत्साहसे सेवा होती रहेगी. और फिर उत्सव, मनोरथ तथा ऋतु अनुसार बदलती रीतिके कारण एकविधता नहीं लगनी चाहिये.

एक बात स्पष्ट यह भी समझनी रही कि समर्पणरीति सिर्फ वीकएन्डमें ही करें इतनी सीमित तो नहीं हो सकती, क्योंकि भक्ति आत्मधर्म है. यदि आत्मा वीकएन्डमें ही अनुभूत हो तो भक्ति दो दिन ही कर सकें, पर वैसा नहीं है.

प्र. गाँवमें समर्पणरीतिका निर्वाह ठीक है पर शहेरोंमें वह आज संभव नहीं.

उ. भारतमें पिछले दसेक हजार वर्षसे शहर अस्तित्वमें हैं. केवल चौरासी वैष्णवोंकी वार्ता ही देखें तो उसमें जगन्नाथपुरी, पटना, कन्नौज, काशी, प्रयाग, मथुरा, आग्रा, उज्जैन, अहमदाबाद, गोधरा, मोरबी, सिध्धपुर, लाहौर आदि शहरके रहीशोंका उल्लेख है. यों शहर पहले थे और संप्रदाय पीछे प्रकट हुवा है. तो आज कौनसी नई बाधा उपस्थित हो ग है ? जगतका एक भी शहर ऐसा है कि जहाँ प्रेमी–प्रेमिकाएँ न बसते हो ? तो भक्त क्यों नहीं बस पायेगा ? शहरोमें पानी, सब्जी–फलादि सरलतासे उपलब्ध होते हैं सो समयकी बचत होती है. अपने शक्तिसामर्थ्यानुसार जगह–समय–एकांत भक्तिके लिये जुटायें. टेन्शन और तनाव तो उस जमानेमें बहोत ज्यादा थे, क्योंकि स्वयं परधर्मी शासक ही लूंटमार, अपहरण, वटलाना, हत्या, बलात्कारादिमें प्रवृत्त थे; आजके राक या अफघानिस्तान से भी कहीं कहीं बदतर हालत थी.

प्र. परिवारजन अनाचारी, नास्तिक या अशक्त हो तो क्या कैसे करना ये उलझन होती है.

उ. ऐसी उलझन ८४ वैष्णवोंको भी होती ही थी और भविष्यके साधकोंको भी होती रहेगी. उसका को सार्वकालिक या संस्थाकीय उपाय नहीं है. या तो पुरुषार्थ करके छुट्टे हो जाओ, नहीं तो समझौता करके साथ रहो. एक घरमें दो भिन्न रसोईघर करो अथवा बारी बारीसे रसो करो. इसमें तो पारिवारिक स्तरपे स्वयं ही हल निकालना रहा.

प्र. महिनेमें चारेक दिन स्त्री रजस्वला हो या पुरुषको बहारगांव जाना पडता हो तब क्या करना ? खास करके सखडीभोग धरते हो तो ?

उ. घरकी अन्य जिम्मेदारीओंकी तरह सेवामें भी एकदूसरेके सहयोगी और वक्त आनेपे एकदूसरेके बदलीके सेवक बननेका कौशल्य पति–पत्नीको पनपाना चाहिये. पति रसो करते सीख जाये और रोजसे घंटाभर जल्दी उठकर चार दिन सेवा पहुँचे. फिर आजकल तो फ्रीज, ओवन आदि सुविधा उपलब्ध होनेसे साधनसंपन्नको खास तकलीफ नहीं है; प्रायः रात्रिको या वीकएन्डमें तैयारी की जा सकती है. वैसे ही स्त्री और बच्चें भी अकेले हो तब सेवा पहुँच सकते हैं.

प्र. समर्पणरीति अपीलिंग या रुचिकर नहीं लगती, नवागंतुकोंको या बरसोंसे सेवा करनेवालोंको भी.
उ. गत सवापांचसो वर्षोंसे राजा–रंक स्त्री–पुरुष आबालवृद्धको उसमें मजा आती रही है. तो सोचना रहा कि कमी अपनेमें है या समर्पणरीतिमें. और फिर शराब जैसा अपीलिंग या रुचिकर न लगे तो शराबी पानी पीना छोड देते हैं क्या ? पत्नीयाँ टकले पतिओंको छोड देती हैं ? रविवारको बाहर खानेवाले घरमें पूरे सप्ताह खाना छोड देते हैं ? अतः रेडीमेड वीकएन्डके धार्मिक आयोजनोंके थ्रील या चील–आउटका मोह छोडकर धीरजसे नित्यनियमसे समर्पणरीति अपनानी रही. खरगोशकी नहीं तो कछुएकी गतिसे ही सही, अंतर तो कम होगा ही. मोहनको मोह लेनेका एक जनममें तो मौका दो !

प्र. सेवा कमसे कम रोज कितने घंटे करनी चाहिये ?
उ. श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करते हैं: ''सर्वथा वृत्तिहीनश्चेद् एकं यामं हरौ नयेत्''. अर्थात् बेन्कबेलेन्स न हो और रोज कमाकर खाते हों तो भी नित्य तीन घंटे तो सेवा करनी ही चाहिये; हरेक व्यक्तिको नहीं तो कमसे कम परिवारके सब मिलकर. आपत्कालमें या प्रवासादिमें उसमें छूट ले सकते हैं पर सदाके लिये नहीं.

प्र. यदि समर्पणरीतिका निर्वाह किसीसे शक्य ही न रह गया हो तो दूसरा क्या कम विस्तारवाला विकल्प उपलब्ध है संप्रदायमें ?
उ. साधनदीपिकाकार श्रीगोपीनाथजीके उपदेशानुसार श्रवणसे लेकरके दास्य पर्यन्तकी (सख्य और आत्मनिवेदनको छोडकर) सप्तविध भक्तिवाला पूजाप्रकार अपनाया जा सकता है. यद्यपि उसके लिये शरणदीक्षा लेनी पर्याप्त है; ब्रह्मसंबंधदीक्षा लेनी या श्रीठाकुरजीको व्रजभक्तोंकी भावनासे पुष्ट कराने आवश्यक नहीं. वह भी किन्तु घरमें ही अनुष्ठेय है, सार्वजनिक देवालयमें नहीं.

उपसंहार

दिव्य समर्पणरीति सर्वदेश और सर्वकालमें सिद्धान्ततः अनुष्ठेय होने पर भी व्यक्तिके जीवनमें आते उतारचढावके कारण समर्पणरीतिको अनुसरनेमें विघ्न आते रहे यह संभव है. उनमेंके कुछेक श्रीआचार्यचरण स्वयं सर्वनिर्णयनिबंधके भक्तिप्रकरणमें गिनाते हैं: विक्षेप, अशक्ति, प्रतिबंध, अत्याग्रहप्रवेश, परपीडासंभव इत्यादि. दूसरे शब्दोंमें देह, इन्द्रिय, मन, परिवार आदिके कारण बाधा आ सकती है. उनमेंकी कुछेकको निवृत्त करके फिरसे गाडी पटरीपर चढा सकते हैं जबकि को निवृत्त न भी हो. उस स्थितिमें श्रीआचार्यचरण समर्पणरीतिका सांगोपांग निर्वाह न हो तो भी भक्तिका निर्वाह हो पाये ऐसे उपाय सुझाते हैं.

इन उपायोंमेंसे एक उल्लेखनीय उपायको समझें तो हमें आपश्रीका नजरिया समझमें आयेगा. घरमें समर्पणरीतिसे सेवा करते परिवारजन या पडोसियोंको पीडा होती हो तो श्रीआचार्यचरण शून्यदेवालयमें जाकर सेवा करनेका कहते हैं. अर्थात् पास को खंडहर हो वहाँ श्रीठाकुरजीको झांपीजी करके साथ पधरा जाने और सेवा पहुँचके झांपीजी करके वापस साथ घर पधरा लाने. क्योंकि मूल बात है भक्तिका प्राणतत्त्व प्रेम पनपे वैसे एकांतकी. यदि घरमें बृहद्समर्पणरीति + एकांत है तो खंडहरमें अल्पसमर्पणरीति + एकांत मिल पायेगा, पर एकांत उपलब्ध है तब तक श्रीआचार्यचरण हताश नहीं. ''अल्पं बहु वा न प्रयोजकं, सेवनं स्वयोग्यानुसारेण'' ऐसी आज्ञा आपश्री करते हैं.

अब देखो, अपन खुदको प्रेममार्गी बतानेवाले इतना नहीं समझते जो श्रीआचार्यचरण हमें समझाना चाहते हैं, कि प्रेमको पनपाने एकांत चाहिये. अरे कोलेजियन प्रेमीपंखी तो ये बात समझते ही होते हैं पर एक बंद कमरेमें मटरगस्ती करते पांच–छह सालके बच्चे भी को बुझुर्ग वहाँ जा पहुँचे तो ''अंकल–आंटी प्लीझ हमें खेलने दो'' कहकर उन्हें बाहर धकेलकर एकांत बनाये रखते हैं. और अपन तो बस सार्वजनिक मंदिर खोलते जा रहे हैं और झापटियाकी झापट खाते खाते दर्शन करके धन्यताका अनुभव करते हैं ! ऐसे क्या प्रेम होता या किया जाता है ? श्रीआचार्यचरण आज्ञा करते हैं कि घरमें न जमें तो शून्यदेवालयमें जाओ; विक्रेता कहते हैं सार्वजनिक देवालयमें आवो ! ये विरोधाभास नहीं, विरोधी फांटा है संप्रदायमें, शरीरमें फैले केन्सरके कोष हैं रेडीमेड धर्मके रिटेल या होलसेल विक्रेता.

खैर. समर्पणरीति धड है तो प्रेमलक्षणा भक्ति सिर है. प्रेम पनपनेकी अनुकूल परिस्थिति घरमें या खंडहरमें भी मिली तो समर्पणरीतिमें घटबढके कारण आँच नहीं आयेगी.

अतः उपसंहारमें एक श्रीआचार्यचरणका वचन कहना चाहूँगा. यूँ तो समर्पणरीतिसंबंधी अनेक सुंदर भगवद्वचन और आचार्यवचन हैं पर मुझे को एक वाक्यमें समर्पणरीतिका सार कहनेका कहे तो मैं यही वाक्य कहुंगा. वैसे ये संदर्भोपात्त वाक्य है और अपूर्ण उध्धृत कर रहा हूँ, फिर भी समूची समर्पणरीति समझमें आ जाय वैसा परिपूर्ण होनेसे मुझे अतिशय प्रिय है सो उससे ही पूर्णाहुति करता हूँ
''येन स्यात् निर्वृतिश्चित्ते तत् कृष्णे साधयेद् ध्रुवम्''.
जिसे धरनेसे चित्तमें आपको अवश्य आनंद हो उसे श्रीकृष्णको अवश्य धरें.
जयश्रीकृष्ण.